महर्षि दयानन्द सरस्वती की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा का मुख पत्र

वर्ष : ६० **अंक** : ०३

दयानन्दाब्द: १९३

विक्रम संवत्: फाल्गुन कृष्ण २०७४

कलि संवत्: ५११८

सृष्टि संवत्: १,९६,०८,५३,११८

सम्पादक

डॉ. दिनेशचन्द्र शर्मा

प्रकाशक-परोपकारिणी सभा,
केसरगंज, अजमेर- ३०५००१
दूरभाष: ०१४५-२४६०१६४

मुद्रक-श्री मोहनलाल तँवर
वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।
दूरभाष : ०१४५-२४६०८३१

परोपकारी का शुल्क

भारत में

वार्षिक-२०० रु., **द्विवार्षिक**-३९० रु.
त्रिवार्षिक-५८० रु.
आजीवन (१५ वर्ष)-२००० रु.
एक प्रति - १५/- रु.

विदेश में

वार्षिक-५० यू.के. पाउण्ड/८० यू.एस.डॉलर
द्विवार्षिक-९५ पाउण्ड/१५२ डॉलर
त्रिवार्षिक-१४० पाउण्ड/२२५ डॉलर
आजीवन (१५वर्ष)-५००पा./८०० डॉ.
एक प्रति - ३ पाउण्ड
एक प्रति - ४ डॉलर

वैदिक पुस्तकालय : ०१४५-२४६०१२०
ऋषि उद्यान : ०१४५-२६२१२७०

ओ३म्

विद्याविलासमनसो धृतशीलशिक्षा:,
सत्यव्रता रहितमानमलापहारा:।
संसारदु:खदलनेन सुभूषिता ये,
धन्या नरा विहितकर्म परोपकारा:।।

RNI. No. ३९५९ / ५९

परोपकारी

फरवरी प्रथम २०१८

अनुक्रम

०१. डॉ. अम्बेडकर और भारत विभाजन	सम्पादकीय	०४
०२. ईश्वर संभवत: है, संभवत: नहीं है!	डॉ. धर्मवीर	०७
०३. कुछ तड़प-कुछ झड़प	प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'	१३
०४. मनु और नीटशे	चमूपति	१७
०५. हम ऋणी हैं	तपेन्द्र वेदालङ्कार	२०
०६. शङ्का समाधान- १८	डॉ. वेदपाल	२३
०७. वैदिक पुस्तकालय के नये संस्करण		२५
०८. विज्ञान आस्तिकता और नास्तिकता	प्रभात नायक	२७
०९. 'महाकवि' महर्षि दयानन्द....'	पं. वीरेन्द्र शास्त्री	३३
१०. संस्था-समाचार		४१
११. आर्यजगत् के समाचार		४२

www.paropkarinisabha.com
email : psabhaa@gmail.com
- **उपनिषद्, दर्शन, प्रवचन आदि सुनने हेतु बटन दबाएँ** -
www.paropkarinisabha.com → **Daily Pravachan**

लेख में प्रकट किए विचारों के लिए सम्पादक उत्तरदायी नहीं है। किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्यायक्षेत्र अजमेर ही होगा।

सम्पादकीय

डॉ. अम्बेडकर और भारत विभाजन

20वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में दलित आन्दोलन के प्रखर नेता डॉ. भीमराव अम्बेडकर का नाम उल्लेखनीय है। इससे पूर्व आर्यसमाज ने दलित-उत्थान, अस्पृश्यता-निवारण के लिए आन्दोलन का शुभारम्भ किया था, क्योंकि जन्म-आधारित जाति-व्यवस्था आर्यसमाज स्वीकार नहीं करता, ऊँच-नीच, छुआछूत का आर्यसमाज खण्डन करता है। आर्यसमाज के द्वारा एकान्तिक दृष्टिकोण से देखा जाए तो इस क्षेत्र में स्वामी श्रद्धानन्द का संस्थागत योगदान सर्वोपरि माना जाता है। उन्होंने सर्वप्रथम दलितों के लिए पृथक् आन्दोलन प्रारम्भ किया और कांग्रेस में रहकर कांग्रेस में दलितोत्थान हेतु रिपोर्ट प्रस्तुत की और जब महात्मा गांधी तथा अन्य कांग्रेसीजनों ने स्वामी श्रद्धानन्द के दलितोत्थान के विचारों को व्यावहारिक रूप में स्वीकार नहीं किया तो उन्होंने कांग्रेस से ही त्यागपत्र दे दिया और स्वतन्त्र रूप से आर्यसमाज के मंचों से अछूतोद्धार का कार्य करने में संलग्न हो गए। यहाँ तक कि डॉ. अम्बेडकर ने स्पष्ट रूप से स्वामी श्रद्धानन्द द्वारा दलितोद्धार के लिए किए गए कार्यों की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। उन्होंने स्वामी जी के यशस्वी कार्यों को स्वीकार किया। स्पष्टत: आर्यसमाज ने दलितोत्थान के लिए सिद्धान्तत: एवं व्यावहारिक रूप से उसमें शिक्षा के प्रचार, छुआछूत का विरोध, समान अधिकार का समर्थन करते हुए पुनर्जागरण आन्दोलन में अपना सर्वाधिक योगदान किया।

डॉ. अम्बेडकर आर्यसमाज के विचारों को स्वीकार करते हुए भारत के विभाजन में मुसलमानों की भूमिका को भी विस्तार से विवेचित करते हैं। इसके लिए **डॉ. अम्बेडकर संपूर्ण वाङ्मय** का खण्ड-15 मुख्यत: उल्लेखनीय है। यह सत्य है कि 1909 के मॉर्ले मिण्टो अधिनियम के अन्तर्गत धर्म के आधार पर मुसलमानों को जो आरक्षण दिया गया वह मूल रूप में भारत विभाजन का कारण बना और विधिवत् रूप से 1940 में लाहौर अधिवेशन में मुस्लिम लीग ने भारत के विभाजन का प्रस्ताव ही पारित कर दिया था। डॉ. अम्बेडकर ने 1945 में **थॉट्स ऑन पाकिस्तान** नामक पुस्तक का नया संस्करण **भारत विभाजन** के नाम से प्रकाशित कराया था जिसमें हमें विस्तार से मुसलमान और भारत के विभाजन के विषय में उनके द्वारा किए गए तात्त्विक विवेचन का परिचय मिलता है। उन्होंने मुस्लिम मत को उद्धृत करते हुए स्पष्टत: लिखा ''हिन्दुस्तान पर हमले का मेरा मकसद काफिरों के खिलाफ अभियान चलाना और मोहम्मद के आदेशानुसार उन्हें सच्चे दीन में मतान्तरित करना है। उस धरती को मिथ्या आस्था और बहुदेववाद से मुक्त करना है। हम गाजी और मुजाहिद होंगे। अल्लाह की नजर में सहयोगी और सैनिक सिद्ध होंगे।'' (बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर, संपूर्ण वाङ्मय खंड 15, पृ. 38-39) उन्होंने आगे कहा कि ''मुसलमानों के लिए हिन्दू काफिर हैं और एक काफिर सम्मान के योग्य नहीं है। वह निम्न कुल में जन्मा होता है और उसकी कोई सामाजिक स्थिति नहीं होती। जिस देश में काफिरों का राज्य हो, वह **दारुल हर्ब** है। ऐसी स्थिति में यह साबित करने के लिए सबूत देने की आवश्यकता नहीं है कि मुसलमान हिन्दू सरकार के शासन को स्वीकार नहीं करेंगे। खिलाफत आन्दोलन के दौरान जब मुसलमानों की मदद के लिए हिन्दू काफी कुछ कर रहे थे, तब भी मुसलमान यह नहीं भूले थे कि उनकी तुलना में हिन्दू निम्न और घटिया कौम है।'' (बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर संपूर्ण वाङ्मय, खण्ड-15, पृ. 304)

उपर्युक्त दोनों उद्धरणों को प्रस्तुत करने का उद्देश्य यह है कि डॉ. अम्बेडकर भारत विभाजन में इस्लाम मत के मूल विचारों को भली प्रकार समझते थे। इन विचारों और धारणाओं के परिणामस्वरूप ही आगे जाकर पाकिस्तान का जन्म हुआ। डॉ. अम्बेडकर ने कांग्रेस के द्वारा मुस्लिम तुष्टीकरण की नीति की प्रकटत: भर्त्सना की और यहाँ तक कि खिलाफत आन्दोलन के भी वे समर्थक नहीं थे। वे इसे भारत, समाज और राजनीति के लिए उचित नहीं मानते थे। हम देखते हैं कि महात्मा गांधी ने पदे-पदे मुसलमानों को हिन्दुओं के समकक्ष मानने की जिद के लिए हद तक

कार्य किया और कितने ही स्थानों पर उन्होंने हिन्दुओं के स्थान पर मुसलमानों का अन्यायपूर्ण तरीकों से समर्थन किया। इसी कारण मदनमोहन मालवीय, स्वामी श्रद्धानन्द और लाला लाजपतराय जैसे राजनेताओं का कांग्रेस और गांधी जी से मोहभंग हुआ था। एक स्थान पर डॉ. अम्बेडकर ने तो इतना तक लिख दिया कि ''श्री गांधी अस्पृश्यों को तो कोई भी राजनैतिक लाभ देने का विरोध करते हैं, लेकिन मुसलमानों के पक्ष में वे एक कोरे चैक पर हस्ताक्षर करने के लिए तत्पर हैं, क्या वास्तव में हिन्दू शासक जाति अस्पृश्यों तथा शूद्रों के साथ शासन में भाग लेने की अपेक्षा मुसलमानों के साथ शासन में भाग लेने को अधिक तत्पर दिखाई देती है।''

प्रश्न उठता है कि महात्मा गांधी मुसलमानों का इतना अधिक तुष्टीकरण करने के बावजूद भारत विभाजन को रोक क्यों नहीं पाए? आर्यसमाज द्वारा किए गए **शुद्धि आन्दोलन** को डॉ. साहेब ने स्पष्टत: स्वीकार नहीं किया था, लेकिन उन्होंने यह स्पष्ट लिखा कि ''ईसाई या इस्लाम मजहब ग्रहण करने से मेरे लोग राष्ट्रीयता ही खो बैठेंगे।'' यह इस तथ्य का साक्षी है कि राष्ट्रीयता का मापदण्ड धर्म के आधार पर निश्चित किया जाने लगा था। यह भी विचारणीय मुद्दा है कि 1940 के भारत-विभाजन के प्रस्ताव को देखा जाए तो मुसलमानों की जनसंख्या केवल 23 प्रतिशत थी।

डॉ. अम्बेडकर की स्पष्ट चेतावनी थी कि ''हिन्दुओं को इस चेतावनी को हृदयंगम कर लेना चाहिए कि यदि उन्होंने स्वतन्त्रता से पूर्व भारत को दो खंडों में बाँटने से इनकार किया तो उन्हें भी वैसे ही भँवर में फँसना पड़ेगा, जिस तरह तुर्की, चेकोस्लोवाकिया और कई अन्य देश फँसते गए हैं। यदि वे अपने जहाज को सागर के बीच नष्ट होने से बचाना चाहते हैं, तो उन्हें फालतू और अनावश्यक बोझ को उससे उतारकर फेंकना होगा और उसे गतिमान करने के लिए हल्का करना होगा। वे अपनी यात्रा को बहुत हद तक आसान कर लेंगे। यदि वे प्रो. टॉयनबी के शब्दों में यह मार्ग चुनें कि जहाज पर रखे ज्वलनशील और अवांछित सामान को फेंककर उसे हलका करने में ही संतोष अनुभव करें।'' (वही, पृ. 210)

उपर्युक्त उद्धरण देने का अभिप्राय यही है कि स्वतन्त्रता के उपरान्त भी जो चिन्ता डॉ. अम्बेडकर ने स्वतन्त्रता से पूर्व अभिव्यक्त की थी वह भारत-विभाजन के रूप में चरितार्थ ही हुई। उन्होंने तो यहाँ तक लिख दिया कि ''मुसलमानों की मानसिकता मूलत: लोकतान्त्रिक नहीं है, न ही यह उनकी प्राथमिकता है। उनकी प्राथमिकता उनका मजहब है। उनकी राजनीति भी मजहब से प्रेरित होती है, जिसका संचालन मुल्ला-मौलवी करते हैं। सामाजिक सुधारों का मुसलमान विरोध करते हैं और विश्वभर में वे प्रतिगामी प्रकृति के हैं।''

डॉ. अम्बेडकर दूरदृष्टा थे, यद्यपि वे साथ ही हिन्दू धर्म के अन्धविश्वासों, जन्मगत जाति-व्यवस्था, छुआछूत तथा मानवीय असमानता के कारण हिन्दू धर्म के तीव्र आलोचक भी थे। इसीलिए उन्होंने बौद्ध धर्म को स्वीकार किया, परन्तु यह भी स्पष्ट है कि प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक परम्परा और सामाजिक व्यवस्था में उन्हें अवश्य ही उदात्त विचारों का परिचय मिला होगा, इसीलिए उन्होंने महात्मा गांधी द्वारा मुस्लिम तुष्टीकरण किए जाने पर और भारत का विभाजन न करने पर जो बल दिया उसको उन्होंने स्वीकार नहीं किया। उन्होंने स्पष्टत: अपना अभिमत व्यक्त किया कि भारत के विभाजन के बाद भारत में संघीय शासन स्थापित होगा और पाकिस्तान केवल मजहब के आधार पर विकसित होगा, लेकिन भारत में संसदीय लोकतन्त्र की जीत होगी।

आज हमारे समक्ष वैश्विक दृष्टि से देखा जाए तो इस्लामिक देशों में ये ही मजहबी आन्दोलन कट्टरता की हद तक विकसित हो रहे हैं। यद्यपि धर्म के आधार पर किसी को भी उग्रवाद का समर्थन नहीं करना चाहिए, लेकिन यह भी सत्य है कि अधिकांश आन्दोलनों के मध्य मजहबी कट्टरता स्पष्टत: दृष्टिगोचर होती है। बुद्ध, महावीर, गांधी और दयानन्द के देश में हिंसा के लिए कोई स्थान उपलब्ध नहीं है। महर्षि दयानन्द मज़हबी कट्टरता के समर्थक नहीं थे; इस तथ्य को डॉ. अम्बेडकर भी स्वीकार करते थे, भले ही उन्हें वर्णव्यवस्था की सामाजिक संरचना

स्वीकार नहीं थी। फिर भी आर्यसमाज द्वारा की गई पहल की प्रशंसा वे अवश्य किया करते थे।

भारत विभाजन के बाद आज तक पाकिस्तान से भारत का संघर्ष केवल राजनीतिक रूप से ही नहीं है अपितु भारत के आर्थिक, सामाजिक और वैज्ञानिक विकास की भी स्पर्द्धा पाकिस्तान करता है, बल्कि इन क्षेत्रों में भारत की प्रगति को वह द्वेषदृष्टि से देखता है। लेकिन हमारा मानना है कि मानवीयता के आधार पर सभी समाजों का विकास अपरिहार्य है। तभी डॉ. अम्बेडकर के सपनों के अनुरूप एवं समानता की अवधारणा पर जो संविधान निर्मित हुआ वह अपनी मूल भावना को चरितार्थ कर सकेगा।

भारत की वर्तमान शासन-व्यवस्था, सामाजिक समीकरण और धार्मिक एवं साम्प्रदायिक समूहों की स्थिति को देखते हुए परस्पर सौहार्द एवं उदारता का वातावरण अनिवार्य है, बावजूद तमाम अवरोधों और कट्टरताओं के। लेकिन, किसी भी प्रतिपक्षी के प्रति उदार एवं सहिष्णु व्यवहार व धारणा रखने के पश्चात् भी हमें उसके इतिहास एवं वैचारिक एवं धार्मिक पृष्ठभूमि को भी ध्यान में रखना होगा, प्रत्युत कहना चाहिए कि सतर्क रहना होगा। यही डॉ. अम्बेडकर के विचारों की सजग राष्ट्र के परिप्रेक्ष्य में सार्थकता कही जाए जो कि उन्होंने जो भी उचित समझा, कहने में कभी संकोच नहीं किया, निर्मलता से उसे समाज एवं बुद्धिजीवी वर्ग के समक्ष रखा। यद्यपि उनके विचार विभिन्न विरोधी विचारों, मतों-सम्प्रदायों एवं समाजसमूहों को कटु लगे हों, उनकी तीव्रतर आलोचना हुई हो, परन्तु उनके राष्ट्र एवं मातृभूमि के प्रति प्रेम को कोई नकार नहीं सकता। देश को विभाजित कर पाकिस्तान बनने को उनका समर्थन मुस्लिम इतिहास एवं उसकी कट्टरता तथा विभाजित हिन्दू-समाज को देखते हुए था। वे सोचते थे कि पाकिस्तान बनने से हिन्दू जनसंख्या मुस्लिम जनसंख्या से भारत में अनुपातत: बहुत बढ़ जाएगी और इससे संसद में हिन्दू अधिक संख्या में पहुँचकर उचित निर्णय लेने में समर्थ होंगे। परन्तु उन्हें क्या पता था कि भविष्य में सरकार की नीतियाँ पुन: भारत को उसी स्थिति में ला खड़ा करेंगी जिसमें मुसलमान अपनी जनसंख्या बढ़ाकर राजनीतिक दलों को ब्लैकमेल करने की स्थिति में आ जाएंगे।

अन्त में डॉ. अम्बेडकर के इन शब्दों को उद्धृत करना उचित होगा, जिसमें हिन्दू समाज से शिकायत करने के बावजूद वे मातृभूमि की रक्षा के लिए अपना बलिदान तक करने को तैयार हैं-

''मैं यह स्वीकार करता हूँ कि कुछ बातों को लेकर सवर्ण हिन्दुओं के साथ मेरा मतभेद है, परन्तु मैं आपके समक्ष यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं अपनी मातृभूमि की रक्षा करने के लिए अपना जीवन बलिदान कर दूँगा।'' (रा.पु. बाबासाहेब अम्बेडकर, कृष्णगोपाल एवं श्रीप्रकाश, 1940, पृ. 50)

-दिनेश शर्मा

ईश्वर का आश्रय न करके कोई भी मनुष्य प्रजा की रक्षा नहीं कर सकता। जैसे ईश्वर सनातन न्याय का आश्रय करके सब जीवों को सुख देता है, वैसे ही राजा को भी चाहिये कि प्रजा को अपनी न्याय-व्यवस्था से सुख देवे।

-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ७.३९

मनुष्यों को चाहिये कि सदा यज्ञ का आरम्भ और समाप्ति को करें और संसार के जीवों को अत्यन्त सुख पहुँचावें।

-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.६२

जब तक मनुष्य सुख-दु:ख, हानि और लाभ की व्यवस्था में परस्पर अपने आत्मा के तुल्य दूसरे को न जानते तब तक पूर्ण सुख को प्राप्त नहीं होते, इससे मनुष्य लोग श्रेष्ठ व्यवहार ही किया करें।

-महर्षि दयानन्द, यजु.,भा ५.४०

जब तक सबकी रक्षा करने वाला धार्मिक राजा वा आप्त विद्वान् न हो तब तक विद्या और मोक्ष के साधनों को निर्विघ्नता से पाने के योग्य कोई भी मनुष्य नहीं होता है और न मोक्ष सुख से अधिक कोई सुख है।

-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.५२

प्रवचनमाला-१६

ईश्वर संभवतः है, संभवतः नहीं है!

डॉ. धर्मवीर

ईश्वर की चर्चा, उसकी जानकारी हमारे लिये जितनी अनिवार्य है, उसे ठीक से समझाना उतना ही कठिन भी है। ईश्वर के स्वरूप को सामान्यजन के मन में ठीक से बिठा देना कोई आसान बात नहीं, क्योंकि सरलता लाने में थोड़ी सी भी चूक उसे पाखण्ड का रूप दे सकती है। इसे ध्यान में रखते हुए सिद्धान्तों के मर्मज्ञ और मानव-मन की क्रियाओं के पारखी आचार्य डॉ. धर्मवीर ने एक ट्रैक्ट लिखा 'ईश्वर संभवतः है, संभवतः नहीं है।' यह दो किश्तों में दिया जा रहा है। आर्यजन इसे प्रचार का साधन भी बना सकते हैं और विश्लेषण का भी। अधिक से अधिक लाभ हो-इसी विश्वास के साथ।

-सम्पादक

पिछले अंक का शेष भाग.....

एक और समस्या ईश्वर का विचार करने में आती है। प्राणी में चेतन और जड़ को पृथक् बताया जा सकता है, क्योंकि जड़ शरीर में कभी चेतन उपस्थित होता है, कभी नहीं, परन्तु ईश्वर से जड़ को और जड़ से ईश्वर को कभी पृथक् ही नहीं किया जा सकता। फिर उस ईश्वर को जड़ संसार से अलग करके दिखाना संभव नहीं है। संसार में प्रत्येक स्तर पर किसी क्रिया का होना और न होना देखा जाता है। जड़ में परिवर्तन न जड़ की इच्छा से होता है न उसकी आवश्यकता से, परन्तु परिवर्तन प्रतिक्षण हो रहा है। वह जिसकी व्यवस्था से होता है उसे ही ईश्वर कहा जाता है। जैसे शरीर में आत्मा के होने न होने का परिवर्तन देखा जाता है, उसी प्रकार जड़ के बनने-बिगड़ने की प्रक्रिया का जो नियामक है, उसे पहचाना जा सकता है। जब जीवात्मा को बिना देखे पहचाना जा सकता है तो उसी नियम से ईश्वर को क्यों नहीं पहचाना जा सकता?

इस प्रकार संसार में विद्यमान पदार्थों में दो प्रकार के पदार्थों की कल्पना की जा सकती है। एक प्रत्यक्ष है, दिखाई दे रहा है, दूसरा जो दिखाई नहीं दे रहा है। जो दिखाई दे रहा है, इन्द्रियों से जिसका ज्ञान हो रहा है वह भौतिक जगत् जड़ है, परन्तु जो दृष्टिगत नहीं हो रहा है जिसको उसके गुणों से पहचाना जा रहा है उसे चेतन के रूप में जान सकते हैं।

जहाँ तक देखने की बात है, यह शक्ति जड़ की नहीं, चेतन की है। आँख नहीं देखती, आँख से देखा जाता है। कान नहीं सुनते, कान से सुना जाता है। नाक नहीं सूंघती, नाक से सूँघा जाता है। स्पर्श को त्वचा नहीं जानती, त्वचा से स्पर्श का बोध होता है। जिह्वा इसका आस्वाद नहीं लेती, जिह्वा से इसका आस्वाद लिया जाता है। यदि इन्द्रियों में ज्ञान का सामर्थ्य होता तो मुर्दे को भी रूप-रस-गन्ध-शब्द-स्पर्श का अनुभव होना चाहिए। पर हम शव की आँख निकाल कर दूसरे व्यक्ति में लगा देते हैं और वह व्यक्ति देखने लगता है। अतः शरीर न कर्त्ता है, न भोक्ता है, कर्त्ता भोक्ता तो आत्मा है। जैसे चश्मा आँखों को नहीं दिखा सकता वैसे आँखों से देखने वाले आत्मा को भी आँख नहीं दिखा सकती, आँख तो एक चश्मा ही है। जैसे संसार में मनुष्य अपने कार्य और ज्ञान के लिए पृथक्-पृथक् उपकरण बनाता है वैसे ही परमेश्वर ने संसार की भिन्न-भिन्न वस्तुओं को जानने के लिए आँख, नाक, कान आदि उपकरण दिये हैं। ये जड़ उपकरण जड़ वस्तुओं को ही जान सकते हैं। इनसे न तो चेतन आत्मा को, न चेतन परमात्मा को जाना जा सकता है। इन उपकरणों के संचालन से चेतन का अनुमान मात्र होता है।

संसार का प्रत्येक मनुष्य इन दो प्रकार की सत्ताओं का अनुभव करता है, उनका पृथक्-पृथक् अनुभव करने में कोई बाधा नहीं आती। यहाँ ईश्वर को मानने के तीन विकल्प हो सकते हैं। इन पदार्थों से भिन्न किसी जड़ पदार्थ को ईश्वर कहा जाये अथवा अनुभव में आने वाले चेतन को ही ईश्वर नाम दिया जाये या फिर अन्य चेतन की ईश्वर के रूप में कल्पना की जाये।

चेतन के स्तर पर भी हमारे पास दो विकल्प हैं-एक तो हम जाने गये चेतन (जीवात्मा) को ही ईश्वर मानें, तब प्रश्न है कि जिसको जानते हैं उसे ईश्वर मानें अथवा किसी भिन्न चेतन को ईश्वर मानें? यदि जाने गये चेतन

(जीवात्मा) को ईश्वर मानें तो उन सबको मिलाकर ईश्वर मानें या पृथक्-पृथक् किसी एक को ईश्वर मानें? जो चैतन्य प्राणी में मनुष्य के रूप में दृष्टिगत हो रहा है उसी चैतन्य को ईश्वर मानें अथवा किसी अन्य चैतन्य को? यदि मनुष्य चेतन को ही ईश्वर मानें तो ईश्वरत्व के अभिप्रेत गुणों का इनमें अभाव पाते हैं। अत: मनुष्य ईश्वर नहीं हो सकता। इसके विपरीत ईश्वर मनुष्य की एक आवश्यकता है। आवश्यकता का सम्बन्ध पूर्ति से होता है। कोई भी मनुष्य किसी भी मनुष्य की आवश्यकता की पूर्ति करने का सामर्थ्य नहीं रखता। इतना ही नहीं, सब मनुष्य मिलकर भी किसी एक मनुष्य की संपूर्ण आवश्यकता या इच्छा की पूर्ति नहीं कर सकते। इस प्रकार मनुष्य का अधूरापन ही उसके अधूरेपन की पूर्ति के साधन को ईश्वर के रूप में देखता है। मनुष्य या किसी प्राणी के अधूरेपन से ही किसी पूर्ण के होने का पता चलता है। प्रत्येक जीव अधूरा है और सबको अपने अधूरेपन का अनुभव है। वे इसे दूर करने का विचार और प्रयत्न करते देखे जा सकते हैं। इसी अधूरेपन का दूसरा नाम दु:ख है।

इच्छा का होना अधूरेपन का द्योतक है और इच्छा के पूरे न होने का नाम दु:ख है। बहुत सारे लोग बातों में कहते हैं कि लोग दु:ख में ईश्वर का स्मरण करते हैं, परन्तु मनुष्य सुख में ईश्वर का स्मरण कर ले तो दु:ख नहीं होगा। यह कथन अच्छा लगने पर भी विचारने पर गलत लगेगा। हम कहते हैं मनुष्य को सुख में ईश्वर का स्मरण करना चाहिए, परन्तु ऐसा सम्भव नहीं। हमें बहुत सारी वस्तुओं के बिना दु:ख होता है, किन्तु उन्हें हर समय न तो साथ रख सकते हैं न उनका स्मरण किया जा सकता है। हाँ, जब आवश्यकता हो तो उस वस्तु का स्मरण अवश्य आयेगा। उसी प्रकार ईश्वर हमारी आवश्यकता है। आवश्यकता अनुभव होने पर ही उसका स्मरण हो सकता है। हाँ, इतना तो हो सकता है कि जिस वस्तु की हमें अधिक आवश्यकता होती है उसकी आवश्यकता को ध्यान में रखकर हम वस्तु की व्यवस्था बनाके रखें। उसी प्रकार ईश्वर को हर समय स्मरण रखने के लिए हर समय उसकी आवश्यकता का अनुभव होना भी आवश्यक है। जैसे भोजन की आवश्यकता मनुष्य को होती है, पशु को भी भोजन की आवश्यकता होती है, परन्तु पशु भूख के अतिरिक्त समय में भोजन की चिन्ता नहीं करता, इसके विपरीत मनुष्य अगले समय के लिये भी भोजन की व्यवस्था आज ही करता है। मनुष्य को ईश्वर की आवश्यकता भोजन से भी कम होती है। अत: सुख के समय वह ईश्वर की चिन्ता नहीं करता। जैसे प्यास लगने पर प्राणी पानी की खोज करता है। मनुष्य को जब सुख के साधन अपर्याप्त और अधूरे लगते हैं तब उसकी खोज आगे बढ़ती है फिर वह संसार की वस्तुओं को देखकर उनसे होने वाले सुख के स्थान पर उनसे होने वाले दु:खों को देखता है और उनसे छूटने की चिन्ता करता है। इनके उपायों के रूप में जब सारे उपाय और प्रयत्न समाप्त हो जाते हैं, निरर्थक हो जाते हैं तब वह कोई अन्य उपाय की खोज करता है, तब उसे ईश्वर की आवश्यकता का अनुभव होता है।

इस प्रकार ईश्वर हमारी आवश्यकता है। जो हमारी आवश्यकता है उसे हमें प्राप्त भी होना चाहिये। आवश्यकता पर वस्तु की प्राप्ति न हो तो उसका होना व्यर्थ हो जायेगा। संसार में कोई भी वस्तु व्यर्थ नहीं है फिर ईश्वर कैसे व्यर्थ हो सकता है?

आवश्यक वस्तुओं में विकल्प नहीं होता। जैसे भूख है तो भोजन मिले या न मिले यह विकल्प नहीं चलेगा। भूख है तो भोजन मिलना ही चाहिए। इसी प्रकार संसार में दु:ख है तो दूर होना ही चाहिए। संसार की वस्तुओं से दु:ख दूर नहीं होता, संसार की वस्तुएं भौतिक हैं, वे शरीर के दु:खों को तो दूर कर सकती हैं, क्योंकि शरीर भी भौतिक है, परन्तु दु:ख का अनुभव जीवात्मा करता है, उसका दु:ख आत्मा के न्यून सामर्थ्य को दूर करने से मिटेगा। जैसे जड़ वस्तुएं मिलकर जड़ के सामर्थ्य को बढ़ा देती हैं वैसे चेतन का आश्रय चेतन के सामर्थ्य को बढ़ा देता है, अत: चेतन को चेतन की प्राप्ति करनी होगी।

दु:ख को दूर करने के लिए ईश्वर को मानना एक अनिवार्यता है। अत: एक और प्रश्न हमारे मन में उत्पन्न हो सकता है वह यह कि ईश्वर को एक मानें या अनेक। अनेक मानने में हमें प्रतीत ऐसा होता है जैसे अनेक होना अधिकता का द्योतक है, जैसे एक से अधिक दो या तीन

होते हैं, परन्तु एक से अधिक संख्या वास्तव में अपूर्णता की सूचक है। जो एक होगा, वही पूर्ण होगा। सम्पूर्णता ही एकत्व का आधार होता है। जब ईश्वर अनेक होंगे तो बड़े-छोटे होंगे, एक जगह होंगे तो दूसरी जगह पर नहीं होंगे, जो एक कर सकता होगा, वह दूसरा नहीं कर सकता होगा। अत: ईश्वरत्व की संभावना को दो में बाँट नहीं सकते। अत: ईश्वर पूर्ण व एक ही होगा।

जब ईश्वर एक है और पूर्ण है, तब वह एक स्थान पर हो और दूसरे स्थान पर न हो, ऐसा कैसे संभव है? एक स्थान पर होकर अन्य स्थान पर न हो तो उसमें अपूर्णता होगी। इस तरह ईश्वर का एक होना, पूर्ण होना, सर्वत्र होना, ईश्वर होने की शर्त है।

ईश्वर के ईश्वरत्व का जो अनिवार्य गुण है वह ईश्वर का सर्वज्ञ होना है। ज्ञान का सम्बन्ध उपस्थिति के बिना अूधरा है, जो जहाँ होता है, वह वहाँ के विषय में जान सकता है। जो जहाँ पर नहीं रहता, वह वहाँ के विषय में नहीं जान सकता। जानने के लिए 'होना' अनिवार्य होने से ईश्वर सर्वव्यापक होगा। जो सर्वव्यापक होगा, वह सर्वज्ञ होगा। जो सर्वज्ञ होगा वही सर्वशक्तिमान होगा। अत: ईश्वर सब जानने वाला होने से सर्वव्यापक, सर्वत्र रहने वाला है, अत: वही सर्वसामर्थ्य से सम्पन्न होने से सर्वशक्तिमान होगा।

अब एक प्रश्न रहता है। ईश्वर सर्वव्यापक है, सर्वव्यापक होने से सर्वज्ञ है और सर्वज्ञ होने के कारण वह सर्वशक्तिमान है। ऐसे ईश्वर को साकार होना योग्य है या निराकार होना योग्य है? साकार मानना सबसे सुविधाजनक है। प्रथम प्रश्न है कि साकार होना एक परिस्थिति है। स्थूल भूत साकार हैं, परन्तु सूक्ष्म अवस्था में निराकार भी हैं। साकारता और निराकारता पदार्थों में एक परिवर्तनशील अवस्था है। यह परिवर्तनशीलता, व्यवस्था की अपेक्षा से है। संसार का निर्माण करते हुए सूक्ष्म से स्थूल की ओर बढ़ा जाता है।

संसार अनित्य है अत: उसमें परिवर्तन संभव है। परिवर्तन अनित्यता का ही दूसरा नाम है। एक जैसा रहना नित्यता है, बदलते रहना अनित्यता है। संसार बदलता रहता है इसी कारण अनित्य है। जो नित्य है वह अपिरवर्तनीय है। प्रकृति भी मूलरूप में नित्य है अत: प्रवाह से अनित्य होने पर भी स्वरूप से वह नित्य है। इस प्रकार ईश्वर का साकार होना संभव नहीं, वह साकार होते ही अनित्य हो जायेगा, क्योंकि संसार में जितनी भी साकार वस्तुएं हैं वे सब अनित्य हैं। ईश्वर पूर्ण, एक और नित्य होने से साकार नहीं हो सकता, अत: निराकार है।

संसार की वस्तुओं को देखने से भी इन बातों की पुष्टि होती है। जो वस्तु साकार है वह अनेक है। जो साकार है वह एकदेशी है। जो साकार है वह निर्मित है, उसे किसी ने बनाया है, उसका कोई बनाने वाला है। जो बनी है वह नाशवान है। जो वस्तु बनी है, साकार है, वह जड़ भी है। इस प्रकार ईश्वर को साकर मानने में बहुत सारी बाधाएं आती हैं, अत: ईश्वर एक और निराकार है।

इसी प्रकार हम मानते हैं कि परमेश्वर खाता है, पीता है, सोता है अत: परमेश्वर के साथ सभी कार्य जोड़ लिए जाते हैं, जैसे लड़कियाँ छोटी अवस्था में गुड़ियों का खेल करते हुए उसे खिलाती, पिलाती, सुलाती हैं। एक बार हमारे मित्र ओम्मुनिजी की पोती हवन के बाद प्रसाद के रूप में मिला हलुवा गुड़िया को खिला रही थी। गुड़िया के न खाने पर बच्ची को क्रोध आया और उसने, कहना नहीं मानती, बोलकर गुड़िया को दीवार पर फेंक कर मार दिया। पास में खड़े सभी लोग हँसे और कहने लगे ''बच्ची अभी जानती नहीं है कि गुड़िया वास्तव में खाती नहीं।'' पास बैठे मुनिजी बोले-यह तो ठीक है कि बच्ची जानती नहीं, परन्तु इसके मन में सन्देह तो है। आप बड़े लोग पूरे जीवन मूर्ति को खिलाकर आते हैं और आपके मन में सन्देह भी उत्पन्न नहीं होता, आपसे तो बच्ची ही समझदार है।

एक प्रश्न ईश्वर के सम्बन्ध में किया जाता है कि जीवात्मा को ही ईश्वर क्यों न मान लिया जाए। प्रथम तो जीवात्मा की अनेकता उसकी अपूर्णता की पहचान है। फिर संसार में कुछ कार्य मनुष्य के द्वारा किये जाते हैं, परन्तु उन्हीं कार्यों का बड़ा भाग मनुष्य के द्वारा किया जाना संभव नहीं है, तब हमारे करने से जितना हो रहा है उसका शेष कौन कर रहा है? जो कर रहा है वह हमारी तरह होने वाली वस्तु से पृथक् है, हमसे अधिक सामर्थ्यवान् है और

हमारा सहायक है।

मनुष्य का अस्तित्व उसके शरीर से प्रतीत होता है। उसका सुख-दु:ख, हानि-लाभ शरीर के बिना संभव नहीं, परन्तु यह शरीर मनुष्य ने अपनी इच्छा से प्राप्त नहीं किया है। यह एक व्यवस्था से प्राप्त है, कोई व्यवस्थापक है तथा उसकी व्यवस्था में प्राणियों का बड़ा स्थान है, उसे ही लोग ईश्वर कहते हैं। जैसे मनुष्य का जन्म उसके हाथ में नहीं, उसी प्रकार उसका जीवन भी अधिकांश में उसके वश में नहीं होता। मृत्यु तो उसके वश में है ही नहीं। यही परिस्थिति विशाल रूप में देखने पर संसार के निर्माण, संचालन, विनाश की भी है। जब इतना सब हो रहा है, मनुष्य की अपनी इच्छा से भी नहीं हो रहा है, जीवन के सुख-दु:ख की व्यवस्था में जहाँ हमारी इच्छा काम नहीं आती, वहाँ जिसके नियम व व्यवस्था काम करती है उसे ईश्वर कहते हैं। कर्म और कर्मफल का सम्बन्ध विद्यमान ज्ञान से है अत: ज्ञान चेतन का धर्म है और हमारे पास ज्ञान है, हमारी अल्पशक्ति के कारण वह पूर्ण ज्ञान हमारे पास नहीं है। अत: अतिरिक्त ज्ञान जो भी इस संसार में मनुष्य के लिए आवश्यक है वह उसी से प्राप्त हो सकता है जो ज्ञान का स्रोत है, वह ईश्वर कहलाता है।

यदि मूर्ति-पूजा व्यर्थ है, असत्य है तो प्रश्न उठता है कि मूर्तिपूजा चल क्यों रही है? चल ही नहीं रही अपितु दिन-प्रतिदिन बढ़ रही है। लोग कहते हैं इतनी बड़ी संख्या में लोग मूर्ति-पूजा कर रहे हैं वे सब गलत कैसे हो सकते हैं। प्रथम बात पर विचार करते हैं। दुनिया में कोई भी बात अथवा कोई कार्य नितान्त मिथ्या, शत-प्रतिशत हानि करने वाला नहीं होता। पञ्चतन्त्र में कथा आती है कि अन्धे को मछली के स्थान पर साँप पकाकर देना चाहा। अन्धे को ही पक रहे साँप वाली कड़ाही चलाते रहने के लिए कह दिया, साँप के विषैले धुएँ से अन्धे को दिखने लग गया। कुबड़े व्यक्ति को क्रोध में पीठ पर लात मारी तो वह व्यक्ति सीधा हो गया। यही हाल मूर्तिपूजा में भी है। दु:खी व्यक्ति को जो भी मिलता है वह बिना विचारे स्वीकार कर लेता है, उसी का सहारा ले लेता है, अत: जिसको मूर्ति का सहारा दे दिया जाता है वह उसे पकड़े रहता है। व्यक्ति एक क्षण के लिए भी निरालम्ब नहीं रहना चाहता, सत्य उसे मिलता नहीं, असत्य को भय के कारण छोड़ता नहीं। वैसे जो भी मूर्ति में सुख का अनुभव करता है, वह मूर्ति के उपासक की अपनी मनोदशा है। उसमें मूर्ति का कोई योगदान नहीं होता। मूर्ति जड़ है अत: वह कोई सहायता नहीं कर सकती, परन्तु वहाँ का वातावरण और उपासक की मन: स्थिति उसे दु:खमय वातावरण से कुछ समय के लिए दूर ले जाती है। पुरानी परिस्थिति से निकलकर नई परिस्थिति में आने से मनुष्य का ध्यान बँटता है तथा कुछ समय के लिए वह तनाव से मुक्त हो जाता है।

मनुष्य के साथ एक और बात भी उसे अपने पुरानेपन से दूर नहीं होने देती। मनुष्य को जीवन में जो विश्वास, मान्यता, परम्परा, भोजन आदि पहले मिल जाता है वह उसे सहज स्वीकार कर लेता है तथा उसे श्रेष्ठ मानता है, उसे बचाने का प्रयास भी करता है। कोई हिन्दू है, कोई मुसलमान है, कोई ईसाई है, कोई पौराणिक है। उसे संस्कार, भोजन, मान्यता जैसी मिल जाती है स्वाभाविक रूप से वह उन्हें स्वीकार कर लेता है। वह जल्दी से उसे नहीं छोड़ता। फिर प्रश्न उठता है कि ऐसे व्यक्ति को बदलने का प्रयास क्यों करना चाहिए? मनुष्य बदल सकता है यदि उसे प्राप्त से श्रेष्ठ विकल्प दिया जाए। मनुष्य स्वभाव से जहाँ है यदि उसे उससे अच्छी वस्तु, उत्तम स्थिति, अधिक लाभ का अवसर मिले तो वह स्वीकार करने के लिए तैयार हो जाता है। इसी प्रकार किसी व्यक्ति को नये विचार अच्छे लगते हैं तो वह उन विचारों को स्वीकार कर लेता है। इसी कारण गुरु लोग, पैगम्बर लोग अपने अनुयायी और भक्तजनों को किसी दूसरे की बात सुनने से रोकते हैं। मुस्लिम समुदाय इसका सबसे बड़ा उदाहरण है। वह किसी दूसरी बात को स्वीकार करना तो दूर अपने पैगम्बर से भिन्न बात को सुनना भी स्वीकार नहीं करता।

ऐसा मानने वाले बड़ी संख्या में हैं इसलिए उनकी बात को ठीक मानना चाहिए क्योंकि इन लोगों की संख्या अधिक है-यह मान्यता नितान्त मिथ्या है। संख्या अधिक होने से कोई बात सत्य है यदि ऐसा स्वीकार कर लिया जाए तो अनपढ़ और मूर्खों की संख्या इस संसार में अधिक है और अधिक ही रहेगी क्योंकि अनपढ़ उत्पन्न होते हैं शिक्षित बनाये जाते हैं। जो वस्तु बनाई जाती है वह स्वयं

बनने वाली वस्तु से मात्रा या संख्या में सदा कम होगी, अत: यह तर्क स्वीकार्य नहीं हो सकता। यदि एक गाँव में एक हजार लोग रहते हैं, नौ सौ निन्यानवे अनपढ़ हैं और एक शिक्षित है तो समाज में किसको अच्छा समझा जायेगा? सत्य और संख्या में कोई तुलना नहीं की जा सकती।

लोग एक प्रश्न पूछते हैं कि अमुक व्यक्ति के अमुक स्थान पर जाने से, पूजा करने से, स्मरण से उसकी इच्छा पूरी हो गई। यह सुनते ही सभी इच्छापूर्ति चाहने वाले लोगों की दौड़ उसी ओर प्रारम्भ हो जाती है। यहाँ विचारणीय है कि स्थान विशेष में किसी की इच्छा पूरी करने का सामर्थ्य है तो वहाँ जाने वाले प्रत्येक व्यक्ति की इच्छा पूरी होनी चाहिए। इच्छापूर्ति के साथ कोई शर्त या योग्यता निश्चित हो तो उस योग्यता वाले लोगों की इच्छा तो अवश्य पूरी होनी चाहिए, परन्तु लाखों लोग जहाँ जाते हैं वहाँ कठिनता से हजारों की इच्छा पूर्ण होती होगी। फिर शेष की इच्छा पूरी क्यों नहीं हुई? यहाँ पर एक प्रश्न पूछा जाता है कि यदि सबकी इच्छा पूरी नहीं होती तो हर वर्ष भक्तों की संख्या क्यों बढ़ जाती है? इसका उत्तर है जिनकी इच्छा पूरी होती है उनका प्रचार होता है, वे अगली बार अधिक संख्या में एकत्रित होकर देवता के दर्शन करने जाते हैं। इसके विपरीत जिनकी मनोकामना पूर्ण नहीं होती वे शान्त होकर बैठ जाते हैं। अब प्रश्न उठता है जिनकी इच्छा पूरी हुई वह कैसे पूरी हो गई, यदि देवता कुछ करता नहीं है? इसका उत्तर है कि लोगों की इच्छाएँ सामान्य और सांसारिक होती हैं। जाने वाले लोगों में कुछ की पूरी हो जाती हैं कुछ की नहीं। यह बात किसी देवता के पास न जाने पर भी होती है, परन्तु जिसकी इच्छा पूरी हो गई वह समझता है देवता ने उसकी इच्छा पूरी की है। जिसकी इच्छा पूरी नहीं हुई वह मानता है कि देवता उससे रुष्ट है।

वस्तुत: देवता इच्छा पूरी करने का सामर्थ्य रखते तो यह सामर्थ्य सबके पास है या एक के पास। एक के पास हो तो दूसरे के पास वह सामर्थ्य नहीं होता। मन्दिर में हिन्दू की इच्छा पूरी होती है, पीर-दरगाह में मुसलमान की, गुरुद्वारे में सिक्ख की फिर तो सभी में इच्छापूर्ति का सामर्थ्य हो जाता, परन्तु ऐसा है नहीं। मनुष्य जिस वस्तु, व्यक्ति, स्थान में सामर्थ्य मान लेता है वही देवता उस भक्त के लिए इच्छा पूर्ति का काल्पनिक कारण बन जाता है।

मूर्ति-पूजा चलने का एक और कारण है। मूर्ति-पूजा एक व्यापार है। इसमें हजारों लाखों लोग को व्यवसाय मिला है। अत: इसे कोई छोड़ना नहीं चाहता। दूसरे किसी व्यापार में पूँजी लगती है, श्रम लगता है, जिम्मेदारी होती है, परन्तु मूर्ति-पूजा के व्यापार में मालिक को कुछ नहीं मिलता, सेवक सब कुछ का अधिकारी बन जाता है। एक मन्दिर को बनाने में कुछ भी नहीं लगता या कितना भी लग सकता है, यह मनुष्य की इच्छा पर निर्भर करता है। एक पत्थर रखकर भी कार्य चलाया जा सकता है या बड़े-बड़े मन्दिर मठ भी बनाये जा सकते हैं। जो देवता पर भेंट चढ़ाई जाती है उसमें देवता को कुछ भी नहीं मिलता। मिली हुई सारी धन-सामग्री पुजारी व मन्दिर संचालकों की होती है। इच्छा-पूर्ति की भावना से देवता पर प्रसाद चढ़ाने वाला इच्छापूर्ण न होने की दशा में पुजारी से कोई प्रश्न नहीं कर सकता। इसमें उसकी कोई जिम्मेदारी नहीं होती मन्दिर का देवता वस्तु का उपयोग नहीं करता इसलिए उसकी एक सामग्री एक दिन में सैंकड़ों बार भेंट चढ़ती है। इससे अधिक लाभदायक व्यवसाय और कौन सा हो सकता है? जो व्यक्ति इस व्यवसाय में लगा है वह इस लाभ को क्यों छोड़ना चाहेगा?

कभी कोई बात लाख युक्ति प्रमाणों से नहीं समझाई जा सकती, वह घटना से एक बार में समझ में आ जाती है। एक बार दिल्ली में वेद मन्दिर में स्वामी जगदीश्वरानन्द जी के निवास पर एक परिवार उनसे भेंट करने आया। परिवार दिल्ली का ही रहने वाला था। पति-पत्नी दोनों केदारनाथ की यात्रा करके लौटे थे। सब कुशलक्षेम की बातें होने के बाद अपनी यात्रा का वृत्तान्त सुनाते हुए एक रोचक घटना सुनाई, जो बहुत शिक्षाप्रद है-

केदारनाथ मन्दिर में प्रात:काल वे दोनों दर्शन के लिए पंक्ति में खड़े थे भीड़ बहुत थी उनके पीछे एक वृद्ध राजस्थान से भगवान् के दर्शन के लिये आया था, वह भी पंक्ति में चल रहा था। उन्होंने बताया कि मन्दिर में पहुँचे, मूर्ति के दर्शन किये, आगे बढ़ रहे थे तभी पीछे के वृद्ध व्यक्ति ने दर्शन करते हुए वहाँ खड़े पुजारी से प्रार्थना की-

पुजारी जी बहुत वर्षों से भगवान् के दर्शनों की इच्छा थी, बड़ी दूर से चलकर आया हूँ। थोड़ी देर खड़े रहने दीजिए, जिससे भगवान् के भली प्रकार दर्शन कर सकूँ। यह सुनकर पुजारी झल्लाया और उस वृद्ध को आगे की ओर धक्का देते हुए बोला-तुझे दो मिनट में भगवान् क्या दे देगा? मैं यहाँ बत्तीस साल से खड़ा हूँ, मुझे आज तक कुछ नहीं दिया। चलो, आगे बढ़ो। यह है भगवान् की वास्तविकता। यदि कोई भी भगवान् प्रभावशाली होता तो पुजारी, पादरी, ग्रन्थी, मुल्ला, मनुष्य समाज में आदर्श जीवन के धनी होते, परन्तु पाप संभवत: सामान्य लोगों की अपेक्षा इनके पास अधिक है क्योंकि ये भगवान् से डरते नहीं, उन्हें वास्तविकता पता है।

लोग कहते हैं कि ईश्वर को कैसे जानें? किसी भी वस्तु के जानने के क्या साधन हैं? यदि वस्तु उपलब्ध है तो हम उसका प्रत्यक्ष कर लेते हैं, यदि प्रत्यक्ष नहीं है तो उपायों से प्रत्यक्ष कर लेते हैं। प्रथम शब्दों से जानते हैं फिर व्यवहार से। इसको समझने के लिए विज्ञान के उदाहरण से समझा जा सकता है। प्रथम हम सिद्धान्त को कक्षा में समझते हैं फिर प्रयोगशाला में उसका साक्षात् करते हैं। उसी प्रकार ईश्वर के जानने के भी दो साधन हैं। विद्वान् लोग और शास्त्र ईश्वर के सिद्धान्त पक्ष को बताते हैं, फिर व्यवहार से उसका प्रत्यक्ष किया जा सकता है। ईश्वर के बोध कराने वाले दो शास्त्र हैं। ये वेद के व्याख्यान हैं-एक दर्शन और दूसरे उपनिषद्। एक ईश्वर की सत्ता को सिद्ध करते हैं वे दूसरे की बुद्धि में ही उसका समाधान करते हैं। इसके लिए वे युक्ति, प्रमाण, उदाहरण, तर्क आदि का सहारा लेते हैं, परन्तु उपनिषद् की दृष्टि अनुभव को बाँटने की है। उसको युक्ति प्रमाणों से बहुत नहीं समझा जा सकता, उसे अनुभव करने वाला सहज स्वीकार कर सकता है। अत: ईश्वर अनुभव का विषय होने पर भी सिद्धान्त से निश्चय किये बिना उसका अनुभव करना सरल नहीं है। अत: ईश्वर ज्ञान के भी दो पक्ष हैं-सैद्धान्तिक और प्रायोगिक। अत: मनु महाराज कहते हैं-

स्वाध्यायाद्योगमासीत योगात्स्वाध्यायमामनेत्।
स्वाध्याययोगसमपत्या परमात्माप्रकाशते।।

एक आहुति
अपने आचार्य के लिए.....

ऋषि दयानन्द की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा की तन, मन, धन से सेवा करने वाले, उसे अपनी मातृवत् समझने वाले और यहाँ तक कि अपना जीवन समर्पित कर देने वाले डॉ. धर्मवीर आज अपना समस्त भार आर्य जनता अर्थात् अपने उत्तराधिकारियों पर छोड़ गये हैं। उन्होंने ऋषि के स्वप्नों को अपना कर्त्तव्य समझकर सभा को गगनचुंबी ऊँचाइयों तक पहुँचाया। अनेक नये प्रकल्प चलाये यथा-वैदिक गुरुकुल, गौशाला, आश्रम, अतिथियों के ठहरने व खान-पान की नि:शुल्क व्यवस्था आदि। उन्होंने जो-जो कार्य छेड़े उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति में कभी न्यूनता न आने दी। परोपकारिणी सभा ऐसे पुत्र को प्राप्त कर गौरव का अनुभव करती है और बिछुड़कर शोकग्रस्त होने का भी। उनके द्वारा शुरु किये कार्य कभी शिथिल न पड़ें, इस कारण **सभा ने डॉ. धर्मवीर जी की स्मृति में एक करोड़ रु. की स्थिर निधि बनाने का संकल्प लिया है,** जिससे कि धन धर्म के काम आ सके। इसमें सन्देह नहीं कि ये समस्त कार्य आर्य जनता के सहयोग से ही प्रारम्भ हो सके हैं और सहयोग से ही चल भी रहे हैं। इसलिये इसमें भी सन्देह नहीं कि सभा के इस संकल्प को आर्य जनता शीघ्र पूर्णता की ओर पहुँचा देगी और शायद उससे भी कहीं बढ़कर। यज्ञ तो हवि माँगता है। बिना हवि के यज्ञ की कल्पना भी क्या? बस देरी तो सूचित होने की है। हवि बनना तो आर्यों के खून में है, तन से, मन से अथवा धन से।

आप अपना दान चैक, ड्राफ्ट या सभा के खाते में सीधे भी भेज सकते हैं। कृपया, राशि भेजने के पश्चात् सभा में दूरभाष या पत्र द्वारा अवश्य सूचित कर दें।

- मन्त्री

कुछ तड़प-कुछ झड़प

प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

कुल्लियात आर्य मुसाफिर का नया संस्करण- नये वर्ष में परोपकारिणी सभा एक ऐतिहासिक कार्य को सिरे चढ़ाकर एक इतिहास रचने जा रही है। सभा ने रक्तसाक्षी पं. लेखराम जी की कुल्लियात आर्य मुसाफिर के नये संस्करण के प्रकाशन की प्रक्रिया आरम्भ कर दी है। मुझे इस संस्करण की रूपरेखा तथा सभा की योजना के विषय में मुख्य-मुख्य बिन्दुओं पर प्रकाश डालते हुये आर्यसमाजों तथा आर्यजन से इस ऐतिहासिक कार्य से जुड़ने के लिये कुछ निवेदन करने का आदेश दिया गया है।

कोई तीन वर्ष पूर्व आर्यसमाज के गम्भीर विचारक और उत्साही सेवक श्री यशवन्त ने श्री लक्ष्मण जिज्ञासु से विचार करके इस ग्रन्थ संग्रह का एक नया संस्करण प्रकाशित करने का निर्णय लेकर इस विनीत से इसका सम्पादन करने का अनुरोध किया। पं. लेखराम हमारी दुर्बलता है सो इस ऐतिहासिक ग्रन्थ संग्रह के सम्पादन के अति कठिन कार्य को करने की स्वीकृति दे दी। कार्य को हाथ में लिया ही था कि इन दोनों ने आदरणीय धर्मवीर जी से इस परियोजना की चर्चा कर दी। दूरदर्शी धर्मवीर जी उनके विचार को सुनकर फड़क उठे। तत्काल इन्हें कह दिया, आप जो सहयोग कर सकते हैं करें, इसका प्रकाशन तो परोपकारिणी सभा ही करेगी।

मान्य धर्मवीर जी का आदेश शिरोधार्य कर हम पूरे उत्साह से जी-जान से इसे सिरे चढ़ाने में जुट गये। आपने आर्य कम्प्यूटरकार श्री महेन्द्र सिंह आर्य से भी जो कहना था सो कह दिया। ग्रन्थ के पहले भाग (First volume) को तैयार करके करनाल भेज दिया। महेन्द्र जी किसी और कार्य में लगे थे। इतने में धर्मवीर जी चल बसे। हम सब निराश-उदास होकर बैठ गये। इस परियोजना की चर्चा दूर-दूर तक फैल चुकी थी।

श्रीमान् ओममुनि को भी इस कार्य के बीच में लटकने का पता चल गया। आर्यजन हमसे पूछते थे, ''कब छपेगी?'' हम क्या उत्तर दें? मन्त्री जी को जोश आया। आपने हमें कहा, ''धर्मवीर जी की इस अन्तिम इच्छा को पूरा करने के लिए मैं सर्व सामर्थ्य से कार्य करूँगा।'' स्वामी सम्पूर्णानन्द जी सोत्साह इस कार्य में सभा के सहयोग को आगे आ गये। ओममुनि जी ने तथा स्वामी जी ने सम्पादन के लिये कई नये-नये और ठोस सुझाव दिये हैं। स्वामी जी ने कहा है कि पण्डित जी के तर्कों व प्रमाणों की पुष्टि में जहाँ कहीं भी टिप्पणी देने की आवश्यकता है, वहाँ पठनीय टिप्पणियाँ दी जायें। पं. लेखराम जी की लेखनी ने मत पन्थों पर जो प्रभाव डाला है उस पर खोजपूर्ण प्रकाश डाला जावे।

पहले हिन्दी संस्करण में प्रेस वालों को फारसी भाषा का ज्ञान न होने से प्रूफ की अशुद्धियों की भरमार हो गई। पूरी शक्ति से इन्हें दूर करवाने का अपना यत्न होगा।

सभा मन्त्री ने कहा है कि सम्पादकीय प्राक्कथन में पं. लेखराम जी के प्रशंसक सहयोगी शास्त्रार्थमहारथियों तथा उनकी परम्परा के नामी विद्वानों यथा-कुँवर सुखलाल, महाशय 'प्रेम जी', ठाकुर अमर सिंह, पं. देवप्रकाश जी, स्वामी योगेन्द्रपाल, पं. शान्तिप्रकाश, पं. त्रिलोकचन्द्र शास्त्री, पं. निरञ्जनदेव, शहीद श्यामलाल जी, पं. नरेन्द्र जी, पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय आदि सबको स्मरण किया जावे। पं. कृपाराम, पं. गणपति शर्मा, स्वामी नित्यानन्द आदि सबका उल्लेख हो।

पहले भाग का पहला प्रूफ आने दें, स्थान अभाव में जहाँ पहले टिप्पणियाँ छूट गईं, वहाँ अब दे दी जायेंगी। दूसरे भाग में पहले से सावधानी बरती जायेगी। मन्त्री जी ने कहा है कि इस बार कागज-टाइप सब बढ़िया होंगे। दानदाता, सहयोगी, अग्रिम सदस्य बनने वाले सज्जन व समाजें अपनी-अपनी राशि भेजते जायें। कई सज्जनों ने उदारतापूर्वक दान दिया है। भारत के नामी डॉक्टर हमारे ऋषि कुमार जी आर्य सुपुत्र पं. त्रिलोकचन्द्र जी शास्त्री ने बिन माँगे पूछा है कि मैं अपनी आहुति कहाँ भेजूँ। इस यज्ञ की सफलता में अब सन्देह ही क्या? ऋषि जी को पं. लेखराम जी के दीवाने कर्मवीर रब्बे कादियान (पं. इन्द्रजित् जी आर्य के पूर्वजों में से एक, नामी वक्ता विद्वान्) का फोटो कहीं से खोज कर देवें।

पं. लेखराम जी को पढ़-सुनकर मास्टर आत्माराम अमृतसरी, प्रिं. लाल देवीचन्द, आचार्य रामदेव, पं. ठाकुरदत्त अमृतधारा, मेहता जैमिनि जैसे नररत्न देश और समाज को मिले। इनमें से कुछ गिने-चुने पूज्य पुरुषों के फोटो देने का मन्त्री जी का दृढ़ निश्चय है। ऐसे धर्मवीरों की संख्या तो बहुत है। इससे व्यय भी बहुत होगा, परन्तु कुँवर सुखलाल, पं. शान्तिप्रकाश, पं. त्रिलोकचन्द्र शास्त्री, रब्बे कादियाँ, पं. निरञ्जनदेव, पं. नरेन्द्र आदि ने मिशन के लिये पण्डित लेखराम जी के नाम पर जो दुःख कष्ट झोले, जेलों में सड़े गले, उनको हम कैसे भूलें?

सब माननीय आर्यो के सुझावों का हम स्वागत करेंगे। आर्यो! कुँवर सुखलाल की हुँकार भूल न जाना-

सह मज़हब में ऐसी मची खलबली,
गोया महशर का आलम बयां कर गया।
तर्क के तीर बरसाये इस जोर से,
होश पाखण्डियों के हवा कर गया।।

अमेरिका से एक आर्यवीर एक विशेष कार्य के लिये मिलने आ रहे हैं। आशा है कि भिक्षा की झोली फैलाये बिना वह भी सहयोगी बनेंगे। आर्यो! कोहे वकार (गौरव गिरि) की उपाधि एक इस्लामी विद्वान् से प्राप्त करने वाले नर नाहर पं. लेखराम के प्रति अपना कर्त्तव्य पहचानो। परोपकारिणी सभा आपको पं. लेखराम के साथ स्वामी श्रद्धानन्द जी, स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी, पं. शान्तिप्रकाश जी और धर्मवीर जी के तर्पण करने का गौरव प्रदान कर रही है। चूको मत! चूको मत!! यह अवसर बार-बार नहीं आयेगा।

ऋषि उद्यान का सत्संग- आर्यसमाज में केवल एक ही आश्रम, गुरुकुल व धार्मिक स्थान- केन्द्र है जहाँ प्रतिदिन रविवार के सत्संग में उत्साहजनक उपस्थिति होती है। विशेष कार्यक्रमों पर्वों तथा शिविरों पर तो भारी भीड़ होती है। यह है पुण्डरी का स्वामी ब्रह्मानन्द आश्रम। यहाँ शान्तिपाठ होने तक एक भी सत्संगी-बाल, वृद्ध उठकर नहीं जाता। अजमेर के ऋषि उद्यान में अजमेर नगर के बीस-तीस-सौ-पचास सत्संगी वहाँ सत्संग में आते कभी नहीं देखे।

अजमेर के तीन-चार महानुभाव सदैव परोपकारिणी सभा के ट्रस्टी रहे हैं। इनमें से एक दो सज्जन यदि अपने भरे बड़े-बड़े परिवारों व मित्र बन्धुओं को सत्संग से जोड़ दें तो इनका जीवन सफल हो। सभा की, समाज की शोभा हो। शोलापुर में प्राचार्य भगवानदास जी ने अपने रुग्ण होने पर इस सेवक को समाज के सत्संग में उपस्थिति के लिये एक बात कही। आर्यसमाज के अल्पकालिक (Parttimer) सेवक से मैंने विनती की कि आप मेरे साथ शुक्रवार, शनिवार, दो-तीन घण्टे दिया करें। हम सभासदों को रविवार के सत्संग में आने की प्रेरणा देंगे। दस घरों में जाकर कहेंगे तो पाँच-छः आयेंगे ही। लेखरामनगर कादियाँ में आर्य युवक समाज के दैनिक सत्संग के लिये प्रतिदिन कई मुहल्लों में जाकर कहा करता था। आर्यसमाज का मन्दिर सायंकाल खचाखच भरा होता था। आगे चलकर श्री दयानन्द जी, सृष्टिपाल जी, जीवन जी आदि कई युवक ऐसे समय देने लगे। भारत भर में आर्यसमाज का ऐसा संगठन कहीं भी नहीं था। लोग पद पाकर तो प्रतिष्ठा पाना चाहते हैं। समय देकर, सेवा करके यश पाना अति कठिन है। हम चाहते हैं कि प्रचार कार्य में धक्के खायें डॉ. धर्मवीर जी, वेदपाल जी और आचार्य सत्यानन्द जी वेदवागीश। आओ! हम अपने लिये कोई कार्य आप स्वयं खोज निकालें।

सीता माता सन्ध्या करती- एक महात्मा ने कहा, श्री श्रीरविशंकर को राम मन्दिर की बात करने का क्या अधिकार है। यह अधिकार केवल विश्व हिन्दू परिषद्, संघ व राम जन्मभूमि न्यास का है। राम क्या सबके नहीं? इन्हीं के हैं? जब इलाहाबाद हाई कोर्ट में अन्तिम निर्णय आना था, तब लखनऊ से न्यास के वकीलों ने रात्रि नौ-दस बजे के बीच में मुझे चलभाष पर इस अन्तिम पेशी पर श्री रामजन्म भूमि के पक्ष में इतिहास का कोई नया प्रबल प्रमाण देने को कहा। रात्रि समय लखनऊ मान्य वकीलों को Document कैसे पहुँचाऊँ। वे पहले भी मेरा सहयोग लेते रहे हैं।

मैंने कहा, एक मुसलमान द्वारा प्रकाशित बहुत पुरानी पुस्तक को मैंने हिन्दी में प्रकाशित करवाया था। उसमें श्री राम की चर्चा का प्रसंग देखो। प्रमाण मिल जायेगा। ये पुस्तक कहाँ से मिलेगी? मैंने कहा गोमती नगर में श्री

विनोद मिश्रा जी आर्यसमाजी के पास मेरा बहुत सा साहित्य है। उनसे मिलिये। मिल सकती है। उनका पता या चलभाष नम्बर किसी आर्यसमाज से पता करें। वे उनके घर जा पहुँचे। पुस्तक मिल गई। फिर चलभाष पर पूछा, किस पृष्ठ पर यह प्रमाण है? मैंने कहा-श्रीराम जी का प्रसंग पढ़िये। काम बन गया। हम मूर्तिपूजक नहीं। हम वेदनिष्ठ, यज्ञ प्रेमी-रामभक्त आर्यसमाजी हैं। हमारा नाम कौन लेता है? हमारी भावना का तो अनादर ही होता है। सदा मूर्तियों की, मन्दिरों की दुहाई दी जाती है।

राम वनों में यज्ञ रचाते सीता माता सन्ध्या करती
हो हल्ला सुन लो जगराता, ऐसा जपन कहाँ होता था
मिलकर प्राणी सब रहते थे, घर-घर यज्ञ-हवन होता था
जातपांत का रोग नहीं था, गुण का दमन नहीं होता था
व्यथा कथा तो मैंने कह दी, ऐसा कभी वतन होता था...

यदि जगत् मिथ्या है तो...- कुछ वर्ष पहले की घटना है, हम कई जन कालीकट गये थे। डॉ. राधाकिशन जी, डॉ. हरिश्चन्द्र जी, डॉ. अशोक आर्य और माननीय श्री सत्यव्रत जी भी उस कार्यक्रम में सम्मिलित थे। एक विशेष समारोह में व्याख्यान के पश्चात् मुझे प्रश्नों के उत्तर देने थे। एक युवक ने प्रश्न किया आपने कहा है तीन अनादि पदार्थ हैं, परन्तु जगत्गुरु शङ्कराचार्य कहते हैं कि ब्रह्म ही एक सत्ता, यह जगत् मिथ्या है। मैंने उत्तर देते हुये कहा कि प्रकृति (Matter) को विश्व के सब वैज्ञानिक अनादि और अनश्वर मानते हैं। संसार में पाप और पुण्य को भी पूरे विश्व में माना जाता है। जब पापी व धर्मात्मा भी जगत् में हैं तो जीव की सत्ता भी सिद्ध हो गई। ब्रह्म को शङ्कर मानते हैं। जगत् के सृष्टि-नियम Laws of the universe हैं तो नियमों का नियन्ता मानना ही पड़ता है। तीन अनादि पदार्थ तो सिद्ध हो ही गये।

अब रही बात जगत् मिथ्या पर विचार करने की, यदि जगत्=मिथ्या है तो फिर 'जगत्-गुरु' के दो अर्थ हुये। या तो इसका अर्थ मानना होगा-झूठा गुरु और या मानों झूठों का गुरु, झूठ का उपदेश देने वाला गुरु। अब आप ही निर्णय करें कि शङ्कराचार्य जी को जगत्गुरु कहना क्या उनका सम्मान करना है या अपमान? मेरे इस उत्तर पर करतल ध्वनि हुई। श्री शङ्कर के केरल प्रदेश में महर्षि दयानन्द का जयकार गूञ्ज उठा। तब मैंने यह भी कहा कि जगत् को मिथ्या मानने से जन कल्याण, उपकार, सुधार और सबके विकास का तो अर्थ ही कुछ न हुआ। आश्चर्य का विषय तो यह है कि मिथ्या मतों को जानते हुये भी देशवासियों को सत्य को जानने, मानने व प्रचारित करने से भय लगता है और असत्य का परित्याग करने का साहस नहीं कर पाते।

विशेषता क्या है?- एक गीत वर्षों से चल पड़ा है। 'अनेकता में एकता हिन्दू की विशेषता'। हिन्दू एकता को तो विशेषता मानता ही नहीं। यह अनेकता को ही अपनी विशेषता मानता है। ऋग्वेद का संगठन सूक्त इसके गले के नीचे नहीं उतरता। अथर्ववेद के खान-पान, रहन-सहन व मर्यादा पालन के ऐक्यवादी उपदेश ये न मानें तो इसका भला कैसे हो? कहने को तो कह देंगे घर वापसी करेंगे, परन्तु सन् १९५४ में जब विनोबा अपने ही दलित भाइयों को काशी विश्वनाथ मन्दिर में प्रवेश करवाने ले गये तो जन्माभिमानी उन पर टूट पड़े, तब तो बोले नहीं, चुप्पी साध ली। २३ दिसम्बर को घर वापसी करवाने वाले महानायक स्वामी श्रद्धानन्द जी का बलिदान पर्व आया, घर वापसी की दुहाई देने वालों को स्वामी श्रद्धानन्द याद ही न आये। वीर रामचन्द्र, वीर मेघराज तथा महात्मा फूलसिंह ने अस्पृश्यता निवारण के लिये यातनायें सहीं, प्राणोत्सर्ग कर दिये। उनके चित्र इन लोगों ने कहीं भी लगाये हों तो बताओ। जातीय राष्ट्रीय एकता के प्रेरणास्रोत या आदर्श क्या हैं?

छत्रपति शिवाजी के वंशज शाहूजी महाराज ने वेदमन्त्रों के उच्चारण से, वैदिक विधि से अपना राज्याभिषेक करवाने के लिये लोकमान्य तिलक से प्रार्थना की, परन्तु उन्होंने वेद मन्त्रों से यह विधि कराना स्वीकार न किया। शाहू जी का साहस देखिये कि उन्होंने गोरों की आँख में चुभने वाले तिलक जी को आमन्त्रित किया। कोई इसका प्रमाण पूछे तो उनकी सेवा में निवेदन है कि श्री सन्तराम बी.ए. की एक लघु पुस्तक में श्री जयदेव जी आर्य तथा मैंने यह दु:खद प्रसंग पढ़ा था।

गुजरात विधानसभा के गत चुनाव में हार्दिक पटेल ने ''सब हिन्दू हैं'' की तोतारटन की वास्तविकता बता दी।

जाति-पाँति की ऐसी आँधी चली कि हम देखकर ही दंग रह गये। जिनको ऋषि दयानन्द, स्वामी श्रद्धानन्द के नाम से ही डर लगता है, वे एकता के सूत्र में देश को क्या पिरोयेंगे? स्वामी विवेकानन्द जी ने लिखा है कि मुझे कायस्थ होने पर गर्व है। जब संन्यासी को अपने जातिवाद पर अभिमान हो तो देश कैसे बचेगा? सरिता पत्रिका ने कभी इस पर लेख छापा था।

गोधन का नया अंक पढ़िये- मास्टर आत्माराम जी अमृतसरी देश के समाज-सुधारकों की प्रथम पंक्ति के महापुरुष थे। डॉ. अम्बेडकर जैसे नेता की बड़ौदा नरेश ने जो व्यवस्था की, उसका श्रेय मास्टर जी को प्राप्त है। गुजरात प्रदेश में दलितोद्धार आन्दोलन के जन्मदाता आप ही थे। मास्टर जी एक मेधावी विद्यार्थी होने के नाते मास्टर मुरलीधर के प्रियतम शिष्य थे। इतिहास की पाठ्यपुस्तकों में मूर्तिभंजक आक्रमणकारियों द्वारा मन्दिरों की लूट और जड़ पाषाण मूर्तियों की दुर्दशा पढ़कर हिन्दू धर्म से निराश-उदास रहते थे। पं. लेखराम जी का व्याख्यान सुना। शंका समाधान किया तो इन्हें बोध हुआ कि वेद केवल एक ईश्वर को मानता है। वेद में कहीं मूर्ति-पूजा नहीं। ईश्वरी प्रसाद इतिहासकार ने लिखा है कि हिन्दुओं ने मूर्तियों को मूल्यवान् आभूषणों से सजाकर लुटेरों को न्योता तो दे दिया, परन्तु मन्दिरों की रक्षा की व्यवस्था न कर सके। सर्वरक्षक भगवान् की रक्षा का बोझ हिन्दुओं को उठाना पड़ गया।

जो मन:स्थिति मास्टर आत्माराम जी की थी, वही मेरे तथा मेरे जैसे असंख्य विद्यार्थियों की रही। मूर्ति-पूजा के कारण ही असंख्य हिन्दू धर्मच्युत हो गये। अब देश में ऊँची से ऊँची मूर्तियों की स्थापना की होड़ लगी है। महात्मा गाँधी, डॉ. अम्बेडकर आदि की मूर्तियों के अपमान की निन्दनीय घटनायें घटती रहती हैं। सबसे ऊँचा सरदार पटेल, हनुमान, शिवजी भोलेनाथ की मूर्तियों का निरादर क्या नहीं होगा? क्या इससे राष्ट्रीय जातीय अपमान न होगा? मूर्तियों की स्थापना की प्रतिस्पर्धा करने वालों ने इतिहास से क्या सीखा? जड़-चेतन का जिन्हें भेद नहीं, उनमें चेतना आयेगी कहाँ से?

किसी भगवान् ने राहुल को आशीर्वाद दिया तो किसी ने भाजपा नेताओं को। जीते तो थोड़े, परन्तु हारने वाले खिलाड़ी अधिक रहे। मनुष्य के बनाये भगवानों के आशीर्वाद झूठे सिद्ध होने से इन राजनेताओं ने क्या सीखा? भगवानों के भक्तों की हार भगवान् का अपमान है। क्या इससे नास्तिकता को बल नहीं मिलेगा? दरगाहें, कब्रें व मुर्दे क्या कामनायें पूरी कर सकते हैं?

एक उत्साहजनक सूचना

पं. सत्यानन्द वेदवागीश जी आर्यसमाज ही नहीं, सम्पूर्ण भारत में शिरोमणि वैदिक विद्वान् हैं। वैदिक वाङ्मय के उनके तलस्पर्शी ज्ञान से सब परिचित ही हैं। साथ ही वे परोपकारिणी सभा के सम्मानित सदस्य भी हैं।

प्रसन्नता का विषय यह है कि पं. सत्यानन्द वेदवागीश जी ने सभा के सदस्यों के आग्रह पर **ऋषि उद्यान अजमेर में रहने का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया है। वे ऋषि उद्यान में रहकर गुरुकुल के विद्यार्थियों एवं जिज्ञासुओं के लिये वेदांगों का अध्यापन प्रारम्भ करेंगे।** अजमेर निवासियों एवं समस्त आर्यजनता के लिये यह एक सुअवसर है कि ऋषि उद्यान में रहकर शास्त्रों का अध्ययन करें। आशा है आर्यजन इस अवसर का लाभ उठायेंगे। परोपकारिणी सभा आचार्यश्री का धन्यवाद ज्ञापित करती है।

जिसके माता और पिता विद्वान् न हों उनके सन्तान भी उत्तम नहीं हो सकते।

-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.९

ऐतिहासिक कलम....

मनु और नीत्शे

चमूपति

इतिहास के पंडित श्री राजेन्द्र 'जिज्ञासु' से हमें यह लेख प्राप्त हुआ तो हमें 'ऐतिहासिक कलम' स्तम्भ के लिये एक महत्त्वपूर्ण सामग्री मिल गई। लेख 'आर्य' पत्र में प्रकाशित हुआ था। इस पर समय इस प्रकार लिखा है-लाहौर-वैशाख १९७९ तदनुसार मई १९२३ (अंक १) -**सम्पादक**

स्वामी दयानन्द के विषय में उनके किसी प्रतिपक्षी ने कहा था कि उन्हें दर्शन कम आते थे। हेतु, कि उनकी पुस्तकों में दार्शनिक चर्चा कम है। जैसी सूक्ष्म युक्ति-प्रयुक्ति की शृंखला श्री शंकराचार्य, श्री रामानुजाचार्य आदि के ग्रन्थों में मिलती है, वह स्वामी के ग्रन्थों में नहीं। दर्शनों की मोटी-मोटी बातें तो स्वामी जी स्थान-स्थान पर उद्धृत करते हैं परन्तु प्रत्येक दर्शन के न तो अवान्तर वादों में ही पड़ते हैं, न उन प्रश्नों को छेड़ते हैं जिन पर प्रत्येक दर्शन के आधुनिक विद्यार्थी अपनी सारी बुद्धि का बल व्यय कर देते हैं। स्वामी के सत्यार्थ प्रकाश में दर्शनों की अपेक्षा मनु का प्रमाण अधिक दिया गया है।

स्वामी दर्शन कितना जानते थे, हम आज इस विषय में नहीं पड़ना चाहते। भारतवर्षीयों के हृदय में एक भ्रम यह डाला गया है कि भारत दर्शनों की भूमि है। यहाँ विचार ही पर बल दिया जाता है, विचार मात्र से बाल की खाल उतार लेने में भारतीय कुशल हैं। आजकल के भारतीय विचारक ऐसी सम्मतियों को अपनी प्रशंसा समझते हैं और यह कहकर ऐंठते हैं कि हमने स्थूल आचार सम्बन्धी बातों का उल्लंघन कर गम्भीर विचार के समुद्र में जा डुबकी लगाई है।

संसार की गति विचित्र है। उधर दयानन्द को तर्क का अवतार कहा जाता है। आर्यसमाज का यह एक दोष बताया जाता है कि यहाँ जितना वाद-विवाद है, उसका शतांश भी भक्तिकाण्ड तथा कर्मकाण्ड पर बल नहीं दिया जाता। परन्तु तार्किक हैं कि दयानन्द के तर्क से भी सन्तुष्ट नहीं। इन्हें सत्यार्थप्रकाश के स्थान में दूसरा शारीरक भाष्य चाहिये।

जिन लोगों ने तार्किकों का सूक्ष्म तर्क पढ़ उसकी एक-एक समस्या को सुलझाने में घण्टों और दिनों व्यतीत किये हैं, उनकी दृष्टि में दयानन्द का तर्क कार्य-सिद्धि मात्र का तर्क है। हमारी समझ में ऋषि दयानन्द ने अपने धर्म के दार्शनिक पक्ष पर उतना ही बल लगाया है जितना जनसमुदाय की धार्मिक आवश्यकता के लिये पर्याप्त है। धर्म का मुख्य अंग आचार है। भारतवर्ष की जीवन परम्परा में आचार का स्थान विचार से ऊँचा रहा है। भारत का जनसमुदाय कभी तार्किक न था। तार्किक प्रत्येक जाति में हुए हैं। ऐसे ही भारतवर्ष में भी थे। जाति की जाति को तार्किक अथवा सूक्ष्मविचारिणी कह देना, उसे ऐहिक सुखों से जो स्थूल हैं और आचार से सम्बन्ध रखते हैं, वंचित करना है। यह एक राजनीतिक गप्प है कि आर्य जाति परलोक पर दृष्टि रखती है, इस लोक पर नहीं।

हमारे देश में दर्शन का अध्ययन गिने-चुने लोग ही करते थे। साधारण जनता का व्यवहार स्मृतियों से सिद्ध किया जाता था। इस स्मृति-पुंज का नाम धर्मशास्त्र था। स्वामी दयानन्द इस मर्म को जानते थे कि उनके अनुयायी केवल विचारक नहीं किन्तु आचार-सम्पन्न होंगे। उन्हें समाज की स्थापना करनी थी, शंकराचार्य आदि की भाँति किसी वाद की नहीं। अत: स्वामी आवश्यकताभर दर्शनों का दिग्दर्शन मात्र कराकर अपनी पुस्तकों का अधिकांश सदाचार की ही व्याख्या की भेंट कर गए हैं।

आज यह बात तो लोक में प्रसिद्ध है कि आर्य-दर्शन संसारभर के दर्शन में सर्वोच्च है। परन्तु हमारे आचार-शास्त्र के विषय में यह प्रशंसा के वाक्य प्रयुक्त नहीं किये जाते। हम भी इसी में मस्त हो रहते हैं कि हमने विचार में उन्नति की है और आचार में? यह क्षेत्र हमारा नहीं। हम यह भूल जाते हैं कि धर्म नाम ही आचार का है। जैसे संसार की समस्याएँ सुलझाने में ऋषियों का मस्तिष्क संसारभर का नेता रहा है और जहाँ तक धर्म का सम्बन्ध आत्मा-परमात्मा की गहन ग्रन्थियों के सुलझाने से है, हम विचारक संसार के जाने-माने गुरु हैं, उसी प्रकार आचार-शास्त्र में भी हमारा स्थान किसी से पीछे नहीं। हम इस विषय में 'अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनना' अपने तथा अपनी जाति के लिये श्रेयस्कर नहीं समझते, किन्तु जर्मनी के प्रसिद्ध विचारक नीत्शे जो जर्मनी के वर्तमान शक्तियुग का प्रवर्तक है और जो राजनीति को कपट की दलदल से निकाल कर सूधी- खरी बातों पर आश्रित करना चाहता है,

के पुस्तक The Twilight of Idols से उद्धरण प्रस्तुत करते हैं:-

One breathes more freely after stepping out of the Christian atmosphere of hospital and poisons into this more salubrious, loftier and more spacious world. What a wretched thing the New Testament is beside Manu, what an evil odour hangs around it!

अर्थात् ईसाई मत की रोगीशालाओं और विषों के वायुमण्डल से निकलकर मनुष्य इस (मनु के) स्वास्थ्यप्रद, उच्च तथा विशाल जगत् में श्वास लेता है। मनु के सामने नया नियम (बाइबल) क्षुद्र वस्तु है। इस पर दुर्गन्धि छाई है।

एक और पुस्तक The Will to Power में यही महाशय लिखते हैं:-

Manu's words again are simple and dignified. Virtue could hardly rely on her own strength alone. Really it is only the fear of punishment that keeps men in their limits and leaves every one in peaceful possession of his own.

अर्थात् मनु के शब्द खरे और आत्म-प्रतिष्ठायुक्त हैं। पुण्य केवल अपने बल पर आश्रित नहीं रह सकता। दण्ड के भय से ही मनुष्य अपनी सीमा में रहते हैं और प्रत्येक को शान्तिपूर्वक अपना-अपना स्वत्व भोगने देते हैं।

इन्हीं महाशय नीत्शे की एक और पुस्तक Antichrist में यह वाक्य पाए जाते हैं:-

The fact that in Christianity 'holy' ends are entirely absent, constitutes my objection to the means it employs……. My feelings are quite the reverse when I read the Law-book of Manu…….an incomparably intellectual and superior work…. It is replete with noble values, it is filled with a feeling of perfection, with a saying of yea to life, and a triumphant sense of wellbeing in regard to itself and life. The sun shines upon the whole book. All those things which Christianity smothers, with its bottomless vulgarity-procreation, woman, marriage, are here treated with earnestness, with reverence, with love and confidence.

अर्थात् ईसाई मत में 'पवित्र' उद्देश्यों का सर्वथा अभाव है। यहीं उसके प्रयुक्त किये साधनों पर मेरा आक्षेप है।..... परन्तु जब मैं मनु का धर्मशास्त्र पढ़ता हूँ तो मेरे हृदय के भाव इसके सर्वथा विपरीत हो जाते हैं।..... यह पुस्तक विचारपूर्ण और उच्चतम पुस्तक है।..... यह श्रेष्ठ परखों से पूर्ण है। पूर्णता के भाव से भरा पड़ा है। जीवन को हाँ कहता है। जीवन के सम्बन्ध में इसका भाव स्वस्थता का विजयात्मक भाव है। जिन विषयों को ईसाईमत अपने अथाह गंवारूपन से दबा छोड़ता है, जैसे सन्तानोत्पत्ति, स्त्री, विवाह, उन पर (मनु के शास्त्र में) उत्साह, पूजा, प्रेम और विश्वासपूर्वक विचार किया गया है।

इसी पुस्तक से एक और उद्धरण देकर हम इस लेख को समाप्त करेंगे। नीत्शे लिखते हैं:-

I know of no book in which so many delicate and kindly things are to woman, as in the Law book of Manu, these old grey beards and saints have a manner of being gallant to woman which perhaps cannot be surpassed.

अर्थात् मुझे किसी और पुस्तक का ध्यान नहीं जिसमें स्त्रियों के प्रति इतने मृदु, दयापूर्ण भाव प्रकट किये गये हों। जितने मनु के धर्मशास्त्र में। यह भूरी दाढ़ी सन्तजन स्त्रियों के प्रति ऐसे ढंग से (सत्कार) दर्शाते हैं कि उससे आगे स्यात् असम्भव है।

पाठकों ने देख लिया कि भारत का धर्मशास्त्र भी आज जगत् का वैसा ही प्रशंसा-पात्र बन रहा है, जैसा कभी भारतीय दर्शन था। समाज का आधार धर्मशास्त्र है। उसके पढ़ने, समझने और उस पर आचरण करने की सारे मानव समाज को आवश्यकता है।

अब पाठक समझ जाएंगे कि ऋषि दयानन्द ने मनु को क्यों इतना सराहा है। ईसाई मत के पक्षपात से जो विचारक, चाहे वह पाश्चात्य हो या प्राच्य, मुक्त होता जाएगा, वही मनु के गुण गाएगा। आजकल की शिक्षा के ईसाई रंग में रंगे जाने के कारण मनु के नियम लोगों की आंखों में नहीं जँचते। परन्तु वास्तव में मानव प्रकृति के अनुकरण योग्य यदि कोई धर्मशास्त्र है तो वह है मनु का। इसमें काल्पनिक सिद्धान्त नहीं, क्रियात्मक सच्चाइयाँ हैं।

परोपकारी के सुधी पाठकों के लिए आवश्यक सूचना

परोपकारी शुल्क भेजते समय नये या पुराने ग्राहक के उल्लेख के साथ-साथ ग्राहक संख्या अवश्य लिखें, अन्यथा शुल्क जमा करने में कठिनाई आती है। फलस्वरूप पाठकों के पास पत्रिका नहीं पहुँच पाती है। ऐसे ही अपना नाम हटवाते व जुड़वाते समय दूरभाष संख्या सहित अपना पूरा विवरण लिखकर भेजें। ई.एम.ओ. के द्वारा शुल्क भेजने वाले ग्राहक भी सन्देश के साथ अपनी ग्राहक संख्या सहित पूरा विवरण भेजें। **परोपकारी पत्रिका कार्यालय से निरन्तर भेजी जाती है, फिर भी जिन लोगों के पास पत्रिका का कोई अंक प्राप्त ना हुआ हो तो कृपया पत्र या दूरभाष द्वारा हमें सूचित करें, ताकि हम वह अंक पुनः भेज सकें, साथ ही अपने डाकघर में इसकी जाँच आदि भी करें।**

धनराशि भेजने हेतु सूचना

परोपकारिणी सभा महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित सभा है एवं उनके कार्यों को आगे बढ़ाने के लिय कृत-संकल्प है। सभा द्वारा ऋषि के स्वप्नानुरूप गुरुकुल, संन्यास एवं वानप्रस्थाश्रम, ध्यान शिविर, वैदिक साहित्य का प्रकाशन, देश में प्रचार, परोपकारी पत्रिका के माध्यम से जन-जागरण, भव्य अतिथिशाला, भोजनशाला आदि अनेक प्रकल्पों का संचालन हो रहा है। ये सभी कार्य आर्यजनों के सात्विक दान से ही होते हैं। अतः दानी महानुभावों से निवेदन है कि वेद, ईश्वर, दयानन्द के इस कार्य में अपना सहयोग अवश्य प्रदान करें।

चैक, ड्राफ्ट, धनादेश (मनीआर्डर) द्वारा राशि भेजने वाले उन पर '**परोपकारिणी सभा**' अवश्य लिख दें। दानी महानुभाव ऑनलाइन भी राशि जमा करवा सकते हैं। भारतीय स्टेट बैंक में एक सहस्र तक की राशि जमा कराने वाले **२५ रु. बैंक सेवा शुल्क के रूप में अतिरिक्त** जमा करवाने की कृपा करें। कृपया, राशि निम्नांकित बैंकों में ऑनलाइन भिजवाकर, जमा कराई गई स्लिप के साथ उद्देश्य लिखकर सभा कार्यालय को सूचित करवाने का कष्ट करें।

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर (PAROPKARINI SABHA AJMER)

१. बैंक बचत खाता (Savings) संख्या-091104000057530 बैंक का नाम-आई.डी.बी.आई. बैंक, पावर हाउस के सामने, जयपुर रोड, अजमेर।
IFSC - IBKL0000091

२. बैंक बचत खाता (Savings) संख्या - 10158172715 बैंक का नाम - भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी बाजार, अजमेर।
IFSC - SBIN0007959

जैसे वेद के वेत्ता विद्वान् लोग वेदानुकूल मार्ग से परमेश्वर को जानकर उत्तम ज्ञान से उसका सेवन करते हैं, वैसे ही जगदीश्वर सब को उपासनीय अर्थात् सेवन करने के योग्य है, वैसे ज्ञान के विना ईश्वर की उपासना कभी नहीं हो सकती क्योंकि विज्ञान ही उसकी अवधि है।

- महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.४१

वैचारिक क्रान्ति के लिए सत्यार्थ प्रकाश पढ़ें।

हम ऋणी हैं

तपेन्द्र वेदालंकार (आई.ए.एस. रिटा.)

सन् १८२५ में टंकारा के जीवापुर मोहल्ले में कर्षन जी तिवाड़ी के घर एक पुत्र ने जन्म लिया। पृथ्वी पर जो असाधारण होते हैं वे बाल्यकाल से ही असाधारण मार्ग पर चलना आरम्भ कर देते हैं। शिवरात्रि को पिण्डी पर चढ़े हुए चूहों को देखकर १३ वर्ष के बालक ने यथार्थ महादेव को देखने का व्रत लिया। १४ वर्ष की बहन के वियोग के प्रथम शोक से मृत्यु क्लेश से बचने का उपाय खोजने का संकल्प किया। प्यारे चाचा के देहान्त से सांसारिक वस्तुओं की नि:सारता का पाठ पढ़ लिया। सन् १८४६ में चुपचाप वैभव सम्पन्न घर को छोड़ दिया। शैला में ब्रह्मचर्य आश्रम की दीक्षा लेकर अगस्त १८४६ में शुद्ध चैतन्य हो गये। श्रृंगेरी मठ से आ रहे विद्वान् पूर्णानन्द सरस्वती से चाणोद-कर्णाली में नर्मदा के तट पर सन् १८४७ में संन्यास की दीक्षा लेकर शुद्ध चैतन्य दयानन्द सरस्वती हो गये।

श्री देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय अपने जीवन के लगभग पन्द्रह वर्ष ऋषि की जीवनी लिखने हेतु लगाने के सम्बन्ध में कारण बताते हुए महर्षि दयानन्द चरित की भूमिका में लिखते हैं-

१. ''मनुष्य यदि तू शान्ति का इच्छुक है तो तुझे आर्ष-ज्ञान की महिमा समझनी होगी और आर्ष-ज्ञान की महिमा को समझने के लिए तुझे दयानन्द को भी समझना होगा।''

२.'' ...घोरतम प्रतिकूलताओं के होने, घोरतम प्रलोभनों के दिये जाने और समय-समय पर शत्रुओं के हाथों अपने प्राण-नाश के यत्न किये जाने पर भी मूर्ति-पूजा के विरुद्ध प्रचण्ड संग्राम उपस्थित करके उन्होंने (स्वामी दयानन्द ने) भारत की आचार्यमण्डली में अपने लिए विशेष स्थान बना लिया है।...जैसे मूर्तिपूजा आर्य संस्कृति की प्रधानतम वैरिणी है, वैसे ही वे मूर्ति-पूजा के प्रधानतम वैरी थे।''

३. यदि इन...हिन्दुओं का पुनरुत्थान होगा तो ब्रह्मचारियों के द्वारा ही होगा। यदि आर्यों का प्रनष्ट गौरव फिर कभी वापस चमकेगा तो ब्रह्मचर्य की ही महिमा से चमकेगा।...वे ब्रह्मचर्य को सर्वोच्च आसन पर स्थापित करके इस देश का महान् उपकार कर गये हैं।

४.'' ...उन्होंने कौपीनधारी संन्यासी होते हुए भी इस बात को स्पष्ट रूप से जान लिया था कि जब तक स्वदेशी जनों में बल नहीं बढ़ेगा, स्वदेश में जातीयता प्रतिष्ठित नहीं होगी, जाति के अन्दर एकता-बन्धन दृढ़तर न होगा, तब तक धर्म-संस्कार, शास्त्र-संस्कार, देशोन्नति, सामाजिकोन्नति आदि कुछ भी न हो सकेगा।''

श्री देवेन्द्रनाथ, जो आर्यसमाजी नहीं थे, ऋषि की इन चार विशेषताओं से-अपने कष्ट भूल जाते हैं, धनाभाव भूल जाते हैं, प्रवास की असुविधाएँ भूल जाते हैं, अस्वास्थ्य भूल जाते हैं, कठिनाइयों से विचलित नहीं होते हैं, अपने परिश्रम को सार्थक मानते हैं तथा जीवन के पन्द्रह वर्ष महर्षि जीवन चरित लिखने हेतु समर्पित कर देते हैं। मथुरा में गुरु विरजानन्द को जीवनदान देने की घटना तक ही लिख पाते हैं, पक्षाघात हो जाता है और देहान्त हो जाता है। यही नहीं, उन्होंने सन् १८९४ में ही दयानन्द चरित नाम से बंगला भाषा में पुस्तक प्रकाशित की थी, जिसका अनुवाद १९३१ में पं. घासीराम जी एम.ए. ने किया था। देवेन्द्र बाबू निर्धन पुरुष थे, उन्हें अपनी पुस्तकों की बिक्री से ही थोड़ी सी आय थी। पण्डित जी लिखते हैं, ''वे दयानन्द के पीछे वास्तव में पागल से थे। उन्हें दिन-रात दयानन्द की चिन्ता घेरे रहती थी।''

सन् १८४८-१८५१ की अवधि में स्वामी जी सिनोर, चाणोद तथा अहमदाबाद रहे। यहाँ उन्हें दो योगी मिले जिनके नाम शिवानन्द गिरि तथा ज्वालानन्द पुरी थे। दुग्धेश्वर के मन्दिर में इन दोनों योगियों ने महर्षि को योग-विद्या के रहस्य के सम्बन्ध में शिक्षा दी। स्वामी जी इन दोनों के बारे में स्वयं लिखते हैं-''योग-विद्या की जो कुछ भी क्रियागत शिक्षा थी वह मैंने उन्हीं दोनों साधुओं से पायी है और मैं उनके कृतज्ञता-पाश में बद्ध रहा हूँ।''

स्वामी विरजानन्द जी महाराज ने स्वामी जी महाराज को स्पष्ट कह दिया था, पहले अपने खाने व रहने की व्यवस्था करो फिर आकर विद्याभ्यास करो। अपरिचित

मथुरा में किससे कहें, कौन खाने-रहने का भार अपने ऊपर लेगा? ब्राह्मण अमरलाल जोशी ने सहर्ष भोजन का प्रबन्ध कर दिया। स्वामीजी स्वयं लिखते हैं, ''आहार और गृह आदि की मुक्तहस्त से सहायता करने के कारण मैं अमरलाल का नितान्त आभारी हूँ।'' देवेन्द्र बाबू लिखते हैं, ''अमरलाल ने इस निःसहाय संन्यासी की सहायता करके अपने को अमर कर लिया था।...अमरलाल तू धन्य है। दयानन्द दिवाकर में जो तेजः पुञ्ज था उसके सञ्चय में तेरा भी भाग है और जिन्होंने उस दिवाकर के प्रकाश से अपने हृदयाविष्ट तिमिर-राशि को छिन्न-भिन्न किया है, तू भी उनकी श्रद्धाञ्जलि का अधिकारी है।''

जून १८६८ में कर्णवास के मेले में राव कर्णसिंह के हाथ से तलवार छीनकर स्वामी जी ने तोड़ दी या केवल राव कर्णसिंह ने तलवार पर हाथ रखा था, या म्यान से निकाल ली थी-इस पर चरित लेखकों की अलग-अलग राय हो सकती है, परन्तु इस पर सब एक मत हैं कि ठाकुर किशन सिंह महाराज की रक्षा के लिए खड़े हो गये थे तथा राव कर्णसिंह अपने दुष्ट संकल्प में सफल नहीं हो सका था।

१६ नवम्बर १८६९ को काशी के आनन्द बाग में लगभग ५० हजार जन उपस्थित थे। स्वामी दयानन्द ने अकेले ही काशी के पण्डितों को शास्त्रार्थ के लिए ललकारा था-किसके बल पर? एक ईश्वर-विश्वास के बल पर, सत्य पर, श्रद्धा के बल पर। २७ पण्डितों ने शास्त्रार्थ में योग दिया था, परन्तु जब अकेले स्वामी दयानन्द से हारने लगे तो बखेड़ा किया। स्वामी दयानन्द पर ढेले, गोबर, मिट्टी फेंकी जाने लगी, परन्तु पं. रघुनाथ प्रसाद कोतवाल ने उन्हें खिड़की के भीतर करके किवाड़ बन्द किये तथा गुण्डों को बलप्रयोग कर खदेड़ दिया। महर्षि दयानन्द चरितकार लिखते हैं, ''यदि वे महाराज की रक्षा नहीं करते तो इसमें सन्देह नहीं कि महाराज क्षत-विक्षत हुए बिना न रहते। समस्त भारतवासी ही नहीं वरन् संसार के सब मनुष्य सदा के लिए इस कर्त्तव्यनिष्ठ न्यायशील कोतवाल के आभारी रहेंगे। वह मूर्तिपूजक था, परन्तु उसने एक क्षण के लिए भी पक्षपात नहीं किया और वह अणुमात्र भी अपने कर्त्तव्य से पराङ्मुख नहीं हुआ।''

पूना में स्वामी जी के ५४ व्याख्यान हुए। १५ व्याख्यान मुद्रित हुए, जिन्हें हम व्याख्यान-मञ्जरी पुस्तक के रूप में जानते हैं। ५ सितम्बर १८७५ को स्वामी जी के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने हेतु अभिनन्दन यात्रा निकाली गयी। दूसरी ओर गर्दभ-यात्रा निकालने का प्रबन्ध विरोध-पक्ष के लोगों ने किया। स्वामी जी के जुलूस पर ईंट, पत्थर, कीचड़ फेंकना आरम्भ किया। मकानों की छत से ईंट पत्थर बरसने लगे। पुलिस ने कुछ नहीं किया। १७ सितम्बर १८७५ को दो व्यक्तियों को ६-६ माह का कारावास का दण्ड देते हुए डब्लू.आर. हैमिल्टन सिटी मजिस्ट्रेट ने अपने निर्णय में लिखा था, ''यह बात सुनने में चाहे कठोर लगे, मेरा विश्वास है कि सारी पुलिस ब्राह्मणों के प्रभाव में थी और इसी कारण उसने अधिक लोगों को नहीं पकड़ा।...मैं पुलिस पर भीरुता का दोष नहीं लगाता, परन्तु मैं यह कहता हूँ कि उसने अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं किया और उसके ऐसा न करने का कारण स्पष्ट है। मैं इसे अपना कर्त्तव्य समझूँगा कि उसके व्यवहार को जिला मजिस्ट्रेट के नोटिस में लाऊँ।''

सन् १८७७ में स्वामी जी लाहौर गये। उन्हें दीवान रतनचन्द के बाग में ठहराया गया। स्वामी जी के व्याख्यान होने लगे। पौराणिकों में तो खलबली मची ही, ब्राह्मसमाज वाले भी विरुद्ध हो गये। दीवान रतनचन्द ने स्वामी जी महाराज को कोठी छोड़ने को कहा। स्वामी जी ने तुरन्त बाग छोड़ दिया। ऐसी स्थिति में खान बहादुर रहीम खाँ ने प्रसन्नतापूर्वक अपनी कोठी महाराज को रहने के लिए दे दी। महर्षि दयानन्द चरितकार लिखते हैं, ''इस उदारता के लिए आर्यसमाज उनका ऋणी रहेगा।'' २४ जून १८७७ को आर्यसमाज लाहौर की स्थापना हुई तथा आर्यसमाज लाहौर की स्थापना डॉ. रहीम खाँ की कोठी में ही हुई थी।

नवम्बर १८७९ में दानापुर में पं. चतुर्भज पौराणिकराज ने विधर्मियों से मिलकर महाराज को क्षति पहुँचाने का प्रयास किया। पौराणिक होते हुए भी उस समय सूबेदार सिंह, सौदागर सिंह व जयराज सिंह ने दुष्टों को ललकारा तथा स्वामी जी को सकुशल गाड़ी में बैठाकर उनके ठहरने के स्थान मिस्टर जोन्स के दीफालाज ले आये। इसके बाद भी ये व्याख्यानों में उपस्थित रहते थे कि कोई दुष्ट कुचेष्टा का साहस न करे।

२९ सितम्बर १८८३ को स्वामी जी को जहर दिया गया। डॉ. सूरजमल के बाद डॉ. अलीमरदान खाँ का इलाज चला। राजपुताना गजट १२ अक्टूबर १८८३ से आर्यजगत् को रोगी होने का समाचार मिला। १६ अक्टूबर को स्वामी जी ने आबू पर्वत के लिए प्रस्थान किया। १७ को रोहट रुके। १८ अक्टूबर को पाली पहुँचे। यकृत व अन्तड़ियों में शोथ व अत्यधिक पीड़ा थी। जिला अलीगढ़ के ठाकुर भूपाल सिंह पाली से महाराज के साथ हो लिए। २१ अक्टूबर को स्वामी जी आबूरोड पहुँचे। मीरा जिला शाहपुरा पंजाब के रहने वाले डॉ. लक्ष्मण दास ने आबू पर्वत के रास्ते में महाराज को अचेत अवस्था में देखा। दवाई दी। कुछ आराम हुआ। महाराज के साथ आबू पर्वत आ गये। चिकित्सा प्रारम्भ की। स्वामीजी सचेत हो गये, हिचकियां बन्द हो गयीं, दस्त भी कम हो गये। डॉ. लक्ष्मणदास ने छुट्टी लेनी चाही, नहीं दी गयी। त्यागपत्र दिया, मन्जूर नहीं हुआ। अजमेर आने पर स्वामी जी की चिकित्सा की। स्वामी जी ने शाल आदि देने चाहे, नहीं लिये। डॉ. सा. ने कहा-''महाराज यदि मेरे पास धन होता तो मैं इतना धन आपके एक-एक लोम पर न्यौछावर कर देता।''

अलीगढ़ के भक्त भूपाल सिंह की सेवा के विषय में महर्षि दयानन्द चरित में लिखा है, ''जिस सहृदयता से ठाकुर भूपाल सिंह ने महाराज की सेवा की उस सहृदयता से तो कोई पुत्र भी अपने पिता की नहीं करेगा। वे ही महाराज का मल-मूत्र उठाते थे और मल से सने हुए वस्त्र धोते थे, परन्तु तनिक भी घृणा व ग्लानि नहीं करते थे। इस सेवा के लिए आर्यसमाज उनका सदा आभारी रहेगा।''

३० अक्टूबर १८८३ को दीपमालिका के दिन स्वामी जी ने देह त्याग दी। आर्यजाति अनाथ हो गयी। ३१ अक्टूबर को वेदपाठ के बाद अरथी उठी, रामानन्द ब्रह्मचारी, गोपालगिरि संन्यासी, पण्डित वृद्धिचन्द और मुन्नालाल वेद मन्त्र पढ़ते चल रहे थे, पीछे प्रतिष्ठितों का समूह था। मलूसर में वैदिक विधान से अन्त्येष्टि कर दी गयी।

उन्नीसवीं सदी की स्थितियों को ध्यान में रखते हुए जब इन भद्रजनों के त्याग, ऋषि प्रेम, न्यायप्रियता, साहस, सेवा को देखते हैं तो मस्तक उनके प्रति श्रद्धा से झुक जाता है। ऋषि के प्रति सुकृत करने वाले महानुभावों के हम ऋणी हैं, इनके प्रति कृतज्ञ हैं।

दयानन्द धर्मार्थ चिकित्सालय

परोपकारिणी सभा द्वारा संचालित ऋषि उद्यान में वर्ष २०१२ से आयुर्वेदिक चिकित्सालय चल रहा है। चिकित्सालय में उपलब्ध सभी औषधियाँ नि:शुल्क दी जाती हैं। डॉ. रमेश मुनि जी चिकित्सक के रूप में इस चिकित्सालय का कुशलतापूर्वक कार्यभार सम्भाल रहे हैं।

दानी महानुभावों से सहयोग की भी अपेक्षा है।

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर (PAROPKARINI SABHA AJMER)

१. बैंक का नाम-**भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी बाजार, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**10158172715**

IFSC-SBIN0007959

२. बैंक का नाम-**आई.डी.बी.आई**, पावर हाउस के सामने,

जयपुर रोड, अजमेर।

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**091104000057530**

IFSC-IBKL0000091

email : psabhaa@gmail.com

शङ्का समाधान - १७

डॉ. वेदपाल, मेरठ

शङ्का- १. क्या आर्ष ग्रन्थों में नौ लाख योनियों का कहीं प्रसंग है?

२. शान्तिपाठ में तीन बार शान्तिः किसके लिए अभिप्रेय है? पूरा शान्तिपाठ तो उपासक हेतु है।

३. क्या सतयुग, त्रेता एवं द्वापर होते हैं? उनके बीच की कालरेखा कौन सी है?

-जयदेव अवस्थी, जोधपुर

समाधान- १. सृष्टि का शाश्वत नियम है-जीव का शरीर के साथ संयोग= जन्म तथा उससे वियुक्त-अलग होना=मृत्यु। तद्यथा- **१. सस्यमिव मर्त्यः पच्यते सस्यमिवाजायते पुनः।।** -कठोपनिषद् १.१.६

२. जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च

- गीता २.२७

जीव के शरीर धारण और त्याग की यह यात्रा अनादि है अनन्त है। जीव के गुणों में ज्ञान भी है। वह ज्ञाता है। वेदान्त दर्शन में कहा है- **ज्ञोऽत एव** -२.३.१८, तथा न्याय दर्शन १.१.१०- **इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनो लिङ्गमिति।** जीव का गुण ज्ञान होते हुए भी उसके सामर्थ्य की सीमा है। इसलिए उसका ज्ञान सीमित रहता है। इसी कारण उसे अल्पज्ञ भी कहा गया है।

अतः अल्पज्ञ जीव द्वारा कितनी योनियों में भ्रमण किया गया, इसे स्मरण रखना सम्भव नहीं। योनियां कितनी हैं इसकी कोई प्रामाणिक गणना नहीं हो सकती, क्योंकि शरीर/सांचों का निर्माण ईश्वरीय व्यवस्था है। तद्यथा- ''जीव का शरीर तथा इन्द्रियों के गोलक परमेश्वर के बनाए हुए हैं, परन्तु वे सब जीव के अधीन हैं।''- सत्यार्थप्रकाश समु. ७, पृ. १२६

यास्क का कथन है-

मृतश्चाहं पुनर्जातो जातश्चाहं पुनर्मृतः।
नानायोनिसहस्राणि मयोषितानि यानि वै।।
आहारा विविधा भुक्ताः पीता नानाविधाःस्तनाः।
मातरो विविधा दृष्टाः पितरः सुहृदस्तथा।।
अवाङ्मुखः पीड्यमानो जन्तुश्चैव समन्वितः। - निरुक्त १४.६

गर्भोपनिषद्-४ में भी किञ्चित् पाठान्तर के साथ यह श्लोक उपलब्ध है। मैत्रायण्युपनिषद् ३.३ में अवश्य चौरासी लाख योनि का उल्लेख है- ''**असौ भूतात्मान्तः पुरुषेणाभिभूतौ गुणैर्हन्यमानो नानात्वमुपैत्यथ यत् त्रिगुणं चतुरशीतिलक्षयोनिपरिणतम्...।**'' किन्तु मैत्रायण्युपनिषद् सर्वमान्य दश उपनिषद् में परिगणित नहीं है।

अतः यह कथन उचित रहेगा कि इस ब्रह्माण्ड में कितने शरीर-योनियाँ हैं, यह ईश्वर के ज्ञान में ही सम्भव है। यास्क सदृश वेदवेत्ता तक इस संख्या का उल्लेख न कर '**नानायोनिसहस्राणि**' कहकर अगणित छोड़ देता है। अन्यथा वह कोई ज्ञात संख्या का उल्लेख अवश्य कर देता। निश्चित संख्या (नौ लाख, चौरासी लाख आदि संख्याएँ काल्पनिक हैं, इनका यथार्थ से कोई सम्बन्ध नहीं है।) केवल ईश्वरीय ज्ञान का विषय है। अल्पज्ञ जीव के सामर्थ्य से बाहर है।

२. प्रचलित शान्तिपाठ (**द्यौः शान्तिः**...यजु. ३६.१७) यजुर्वेद का मन्त्र है। मन्त्रान्त में तीन बार पठित 'शान्तिः शान्तिः शान्तिः' पद मन्त्र का भाग नहीं है।

मन्त्र में द्यु, अन्तरिक्ष एवं पृथिवी का नाम्ना उल्लेख कर वहाँ शान्ति की कामना कर इन तीनों स्थानों में जल-औषधी आदि जो कुछ भी है, उन सबमें शान्ति की कामना करते हुए- '**सा मा शान्तिरेधि**' वह शान्ति मुझ स्तोता-उपासक को प्राप्त हो, यह कामना है। मन्त्रान्त में तीन बार शान्ति पद का उच्चारण-द्यु-अन्तरिक्ष-पृथिवी-इस लोकत्रय में शान्ति हो-इस कामना से पुनरावृत्त करते हैं। इसे आधिदैविक, आधिभौतिक एवं आध्यात्मिक इन स्तरत्रय से भी सम्बद्ध किया जा सकता है।

३. दार्शनिक दृष्टि से काल द्रव्यान्तर्गत है। अतः काल का विवेचन मानव-इतिहास के साथ ही प्रारम्भ होता है। मनुष्य ने जिस प्रकार अन्य विषयों के ज्ञानसूत्र वेद से ग्रहण किए हैं, उसी प्रकार काल विषयक संकेत भी वेद से ग्रहण किए।

सृष्टि उत्पत्ति से लेकर प्रलय तक के काल को कल्प कहा जाता है। कल्प-काल के विषय में अथर्ववेद में संकेत है कि सौ × अयुत (दस हजार) तक शून्य रखकर उसके पूर्व दो, तीन, चार रखने पर अर्थात् ४३२०००००० चार अरब, बत्तीस करोड़ वर्ष (यहाँ यह स्मरणीय है कि **अंकानां वामतो गतिः**-अंक विपरीत क्रम से जैसे दो, तीन, चार को ४३२ इस प्रकार रखेंगे) सृष्टि का काल है। मन्त्र है-

शतं तेऽयुतं हायनान्द्वे युगे त्रीणि चत्वारि कृण्मः - ८.२.२१

सृष्टि का उक्त काल मन्वन्तर एवं चतुर्युगी आदि रूप में सूर्य सिद्धान्त आदि ग्रन्थों में सविस्तार वर्णित है।

जिस प्रकार निश्चित मुहूर्त्त की संज्ञा दिन, निश्चित दिन की संज्ञा मास तथा निश्चित मास की संज्ञा वर्ष है, उसी प्रकार निश्चित वर्ष की संज्ञा कलि, द्वापर, त्रेता तथा कृत-सत्ययुग है। युगों के यह नाम यजुर्वेद ३०.१८ से लिए गए प्रतीत होते हैं। मन्त्र है-

''कृतायादिनवदर्शं त्रेतायै कल्पिनं द्वापरायाधिकल्पिनम् आस्कन्दाय सभास्थाणुम्।'' तैत्तिरीय ब्राह्मण ४.३.१ में 'आस्कन्दाय' को 'कलये' (कलि का चतुर्थी एकवचन) कहकर व्याख्यात किया है।

युग का विभाजन कालगणना है। काल विभाजन करते समय विभक्त भाग की कोई संज्ञा तो रखनी ही होगी, तभी विभाजन होगा। जिस प्रकार सोम, मंगल आदि अथवा Sunday, Monday आदि। इनके बीच की काल रेखा ठीक इसी प्रकार समझ सकते हैं, जैसे-सोम-मंगल आदि किन्हीं दो दिन अथवा किन्हीं भी दो वर्ष के मध्य का काल बिन्दु।

व्याकरण एवं दर्शन के अध्ययन हेतु प्रवेश प्रारम्भ

महर्षि दयानन्द सरस्वती की उत्तराधिकारिणी **परोपकारिणी सभा के द्वारा 'महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल' ऋषि उद्यान, अजमेर** में पिछले १८ वर्षों से प्रारम्भिक संस्कृत ज्ञान, पाणिनीय व्याकरण और दर्शनों के अध्ययन-अध्यापन का कार्य सुचारु रूप से चल रहा है। अतः व्याकरण एवं दर्शन पढ़ने के इच्छुक विद्यार्थी प्रवेश ले सकेंगे।

इस काल में ऋषि उद्यान में प्रतिदिन यज्ञोपरान्त उपदेश व प्रवचन का लाभ भी प्राप्त हो सकेगा। समय-समय पर विविध विषयों पर विद्वानों द्वारा कक्षायें भी होती रहेंगी। ब्रह्मचारियों के लिए निवास और भोजन व्यवस्था निःशुल्क रहेगी। प्रवेश लेने वाले ब्रह्मचारियों के लिए निम्नलिखित बातें ध्यान देने योग्य हैं-

- आयु न्यूनतम १६ वर्ष हो।
- न्यूनतम १०वीं कक्षा पढ़े हुए विद्यार्थी प्रवेश ले सकेंगे।
- गुरुकुल के अनुशासन का पालन करना अनिवार्य होगा।

अधिक जानकारी हेतु सम्पर्क करें।

स्वामी विष्वङ् परिव्राजक - ९४१४००३७५६

समय- ९:००-१०:००प्रातः, १२:३०-१:३० मध्याह्न

पता- महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल, ऋषि उद्यान, पुष्कर मार्ग, अजमेर (राज.) ३०५००१

जो विद्वान् लोग परोपकार बुद्धि से विद्या का विस्तार करने, सुगन्धि, पुष्टि, मधुरता रोगनाशक गुणयुक्त पदार्थों का यथायोग्य मेल अग्नि के बीच में उनका होम कर शुद्ध वायु, वर्षा का जल वा ओषधियों का सेवन करके शरीर को आरोग्य करते हैं वे इस संसार में अत्यन्त प्रशंसा के योग्य होते हैं। - **महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.५८**

जैसे पवन सब को सुख देता हुआ सब के रहने का स्थान हो रहा है वैसे ही विद्वान् को होना चाहिये।

-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ५.४१

वैदिक पुस्तकालय अजमेर
द्वारा प्रकाशित नये संस्करण

१. वेदपथ के पथिक (आचार्य धर्मवीर स्मृति ग्रन्थ)

पृष्ठ संख्या-२६४

मूल्य-रु. २००/-(आधे मूल्य पर उपलब्ध)

परोपकारिणी सभा के यशस्वी प्रधान डॉ. धर्मवीर जी का जीवन सत्य के लिये संघर्षपूर्ण रहा है। विषम परिस्थितियों में भी उन्होंने ईश्वर, वेद और धर्म को अपने जीवन से तनिक भी अलग नहीं होने दिया और यही विशेषता रही, जिसके कारण वे एक आदर्श आचार्य, आदर्श नेता, आदर्श लेखक, आदर्श सम्पादक एवं आदर्श उपदेशक के रूप में प्रतिष्ठित हुए। उनके जीवन की कही-अनकही घटनाएँ हमें भी प्रेरणा दें, इस दृष्टि से ये ग्रन्थ अवश्य पठनीय है। जिन्होंने डॉ. धर्मवीर जी को निकट से देखा है, जो उनके जीवन की घटनाओं के साक्षी रहे हैं, उनके संस्मरण इस कर्मयोगी के जीवन की बारीकियों को उजागर करते हैं। ग्रन्थ के प्रारम्भ में चित्रों के माध्यम से भी उनके जीवन की कुछ झलकियों को दर्शाया गया है।

२. महर्षि दयानन्द सरस्वती के कुछ हस्तलिखित पत्र-

पृष्ठ संख्या-३३६ **मूल्य**-रु. २००/-

महर्षि दयानन्द, उनके उद्देश्यों, कार्यों, योजनाओं एवं व्यक्तित्व को समझने में उनके द्वारा लिखे पत्र उतने ही उपयोगी हैं, जितना कि उनका जीवन-चरित्र। ये पत्र महर्षि के हस्तलिखित हैं। पुस्तक की विशेषता यह है कि इसमें मूल-पत्रों की प्रतिलिपि दी गई है और साथ ही वह पत्र टाइप करके भी दिया गया है। यह पुस्तक विद्वानों के दीर्घकालीन पुरुषार्थ का फल है। जनसामान्य इससे लाभ ले-यही आशा है।

३. अंग्रेज जीत रहा है-

लेखक - प्रो. धर्मवीर

पृष्ठ संख्या-२२२ **मूल्य**-रु. १५०/-

इस पुस्तक में डॉ. धर्मवीर जी के 'भाषा और शिक्षा' विषय पर लिखे गये ४२ सम्पादकीयों का संकलन किया गया है। 'परोपकारी' पत्रिका में लिखे गये इन सम्पादकीयों को पुस्तक रूप में प्रकाशित करने की माँग समय-समय पर उठती रही है। अत: पुस्तक पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है। डॉ. धर्मवीर जी का चिन्तन बेजोड़ था। वे जिस विषय पर जो भी लिखते वह अद्वितीय हो जाता था। उनके अन्य सम्पादकीयों का प्रकाशन भी प्रक्रिया में है। पुस्तक का आवरण व साज-सज्जा अत्याकर्षक है।

४. स्तुता मया वरदा वेदमाता-

लेखक - प्रो. धर्मवीर

पृष्ठ संख्या-१३५ **मूल्य**-रु. १००/-

वेद ईश्वर प्रदत्त आचार संहिता है। वेद की आज्ञा ईश्वर की आज्ञा है और वही धर्म है, इसलिये मानव मात्र की समस्त समस्याओं का समाधान वेद में होना ही चाहिये। वेद के कुछ ऐसे ही सूक्तों की सरल सुबोध व्याख्या ही इस पुस्तक में की गई है। पुस्तक की भाषा इतनी सरल है कि नये-से नये पाठक को भी सहज ही आकर्षित कर लेती है। व्याख्याता लेखक आचार्य डॉ. धर्मवीर जी के गहन आध्यात्मिक एवं व्यावहारिक चिन्तन व अनुभवों के परिणामरूप यह पुस्तक है।

५. इतिहास बोल पड़ा–

लेखक – प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु

पृष्ठ संख्या–१५९ **मूल्य**–रु. १००/–

इस पुस्तक में इतिहास की परतों से कुछ दुर्लभ तथ्य निकालकर दिये गये हैं, जो कि आर्यसमाज और महर्षि दयानन्द सरस्वती के गौरव का बखान करते हैं। पुस्तक के लेखक प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु हैं। ऋषि के समय में देश–विदेश से छपने वाले पत्र–पत्रिकाओं के उद्धरण इस पुस्तक में दिये गये हैं।

६. बेताल फिर डाल पर

लेखक – प्रो. धर्मवीर

पृष्ठ संख्या–१०४ **मूल्य**–रु. ६०/–

डॉ. धर्मवीर जी की हॉलैण्ड एवं अमेरिका यात्रा का विवरण एवं अनुभव इस पुस्तक में है। विदेश में आर्यसमाज की स्थिति, कार्यशैली, वहाँ की परिस्थितियाँ एवं विशेषताओं को यह पुस्तक उजागर करती है। यायावर प्रवृत्ति के विद्वान् आचार्य धर्मवीर जी की यह पुस्तक एक प्रचारक के जीवन पर भी प्रकाश डालती है।

७. लोकोत्तर धर्मवीर–

लेखक – तपेन्द्र वेदालंकार,

पृष्ठ संख्या–४४ **मूल्य**–रु. २०/–

तपेन्द्र वेदालंकार (सेवानिवृत्त आई.ए.एस.) ने इस पुस्तक में डॉ. धर्मवीर जी के जीवन की कुछ ऐसी घटनाओं पर प्रकाश डाला है, जिनसे धर्मवीर जी के महान् लक्ष्यों व तदनुरूप कार्यशैली का पता चलता है। इस लघु पुस्तक से प्रेरणा लेकर प्रत्येक आर्य ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज के उद्देश्यों को पूर्ण करने में उत्साहित हो–यही आशा है।

वैदिक पुस्तकालय, अजमेर से क्रय की जाने वाली पुस्तकों की राशि ऑनलाइन जमा कराने हेतु

खाता धारक का नाम – **वैदिक पुस्तकालय, अजमेर।**

बैंक का नाम – **पंजाब नेशनल बैंक, कचहरी रोड, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या – **0008000100067176**

IFSC - PUNB0000800

अतिथि–यज्ञ के होताओं से अनुरोध

अतिथि–यज्ञ के होताओं से उनकी वैवाहिक वर्षगाँठ अथवा जन्मदिन व विभिन्न अवसरों पर ५१०० रु. प्रतिवर्ष सभा को प्राप्त होते रहते हैं। जो महानुभाव संकल्प के साथ इस पुनीत कार्य से जुड़े हुए हैं, उनसे हमारा अनुरोध है कि वे अपनी राशि भेजते समय **जन्मतिथि/वैवाहिक वर्षगाँठ आदि व दूरभाष संख्या** सूचित करना न भूलें। साथ ही यह भी अवश्य सूचित करा देवें कि पहले से भिजवा रहे हैं अथवा नया शुरू किया है। आप अपनी राशि सभा के बैंक खाते में नकद अथवा चैक द्वारा जमा करा सकते हैं।

विज्ञान आस्तिकता और नास्तिकता

प्रभात नायक

पिछले अंक का शेष भाग....

४. आधुनिक शौचालय, जो पेय जल में मलमूत्र विसर्जित करने का माध्यम है उसे किसने बनाया। आज हर आधुनिक बड़े शहर ही नहीं गाँव में भी ५०-५००ग्राम तक मल को १०-१५ लीटर पीने के पानी में घोलकर गटर में बहाया जा रहा है। शहर के नदी, तालाबों, पेय जल के स्रोतों में डालने वाली व्यवस्था के मूल में क्या विज्ञान नहीं है?

५. वैज्ञानिकों ने खेती में दखल दिया तो भयंकर विषैले कीटनाशकों का, बीज संवर्धन से लेकर, फसल सुरक्षा और उत्पाद भंडारण ही नहीं, खाद्य पदार्थ को टिकाऊ बनाने तक में खुलकर प्रयोग करना लाभदायक बताया। फलस्वरूप अन्न, भूमि, जल, वायु सब विषैले हो गए। उगाने वाले, काटने वाले, रखने वाले, बेचने वाले, पकाने वाले, खाने वाले सभी गंभीर लाइलाज कैंसर जैसी बीमारियों का शिकार होने लगे। हमारे धर्मशास्त्र बीजों को घृत से संस्कारित कर, भूमि को गोबर और गोमूत्र से पवित्र कर बीज बोने का निर्देश देते हैं। खेतों में यज्ञ-धूम्र से वायु पवित्र कर फसल का अन्न पवित्र करने को कहते हैं तो वैज्ञानिक उन्हें पिछड़ा कहते हैं। वैज्ञानिक फसल की वृद्धि रासायनिक खाद देकर करते हैं। भूमि को बंजर करने की कीमत पर फसल बढ़ाने का उपाय कितना उचित है?

किसान, जो अपनी फसल के सबसे अच्छे हिस्से से बीज निकालता था, उससे बीज मुफ्त में प्राप्त हो जाता था। अन्न की देसी प्रजातियाँ स्वादिष्ट और पौष्टिक हुआ करती थीं, उनके स्थान पर संकरित प्रजातियों में फसल तो अधिक निकलती है पर स्वाद और पौष्टिकता बहुत कम होती है। इसने किसान को बड़ी बीज कम्पनियों का मोहताज बनाया और किसान को गरीब बनाने में भी इसका हाथ है।

६. मनुष्य का शरीर किस खाद्य के लिए बना है यह भी वैज्ञानिकों ने अभी तक निश्चित नहीं किया है। अधिकतर का कहना है कि मनुष्य मिश्रित खाद्य के लिए बना है और मांस खाना उसके लिए अनिवार्य है। संसार के लोगों को मांसाहारी बनाने का बीड़ा सारे विज्ञानवादियों ने उठा रखा है। सारे डॉक्टर स्वास्थ्य लाभ के लिए मांसाहार की सलाह देते हैं। पर मांसाहार के कारण बहुत सारे रोग होने लगे। जिस कैंसर का पहले नामोनिशान नहीं था आज बहुतायत में होने लगा है।

७. दूध अधिक देने के लिए हार्मोन का इंजेक्शन लगाने का तरीका भी तो वैज्ञानिकों ने ही बताया है। यही इंजेक्शन फलों और सब्जियों में भी लगाकर बड़ा बनाया जाता है। यह हार्मोन दूध और फल में जाकर खाने वाले को बीमार बनाता है।

८. ऊपर से वैज्ञानिकों ने पशुओं की कटाई और मांस के लम्बे समय तक भंडारण के लिए मशीनें बना रखी हैं। नदियों और समुद्रों से मछलियाँ और अन्य समुद्री जीवों को भी पकड़ने के लिए बड़े-बड़े जहाज और उपकरण बना डाले हैं। एक तरफ चिल्लाते हैं कि प्रजातियाँ लुप्त हो रहीं हैं, दूसरी तरफ मांसाहार को बढ़ावा देना समझ से परे है। मांसाहार और शाकाहार में एक मूल फर्क है। शाकाहार बिना उगाये नहीं किया जा सकता, मांसाहार जो उपस्थित है उसे ही मिटा कर लिया जाता है। तभी तो प्रजातियाँ लुप्त हो रही हैं। वन्य और पालतू पशु घास-फूस, झाड़ियों आदि को खाकर खाद रूपी मल-मूत्र देते हैं, जो भूमि की उर्वरकता बढ़ाते हैं, उनको मारने से भूमि बंजर होने लगती है। पक्षियों को मारने से भूमि और आकाश में स्थित कीटों की सफाई नहीं हो पाती जिसके लिए फिर कीटनाशकों का प्रयोग वैज्ञानिकों ने किया। मछलियों व अन्य जल जीवों को मारने से जल स्वच्छ करने की प्रक्रिया बाधित होती है। कुल मिलाकर प्रदूषण की समस्या विकराल होती जाती है।

९. सारा संसार आतंकवाद से पीड़ित है। इस समस्या को गंभीर बनाने में वैज्ञानिकों का बहुत बड़ा योगदान है। कहीं पर भी आतंकवादियों ने कोई फैक्ट्री नहीं लगाई है। उनके धर्मग्रन्थ अनुसार तो यह विज्ञान की शिक्षा ही धर्म-विरुद्ध है तो वे इसे पढ़ेंगे, यह संभव ही नहीं। इसी कारण जितने भी आधुनिक शस्त्रास्त्र हैं उन्हें बनाकर उन्हें देने

वाले भी तो वैज्ञानिक ही हैं, उन्हें बम बनाना किसने सिखाया?

१०. टी.वी., मोबाइल, इंटरनेट जैसे उपकरण बनाकर विद्यार्थियों, मजदूरों और किसानों को मनोरंजन में उलझा दिया गया है।

११. चिकित्सा और औषधि-निर्माण के क्षेत्र में तो बहुत कुछ कहा जा सकता है। अनावश्यक महंगी दवा और जाँचें, निदानशून्य उपकरण आधारित चिकित्सा, मंहगी शिक्षा की क्षतिपूर्ति करते चिकित्सक, अनेकों बीमारियों का कोई इलाज न होने पर भी मरीज का इलाज के नाम पर शोषण, रोज ही किसी न किसी दवा की खोज और पूर्व में प्रयोग की जा रही दवाओं पर हानिकारक होने के कारण प्रतिबन्ध लगाना।

१२. चाहे जिस भी क्षेत्र का ज्ञान हो, वो सज्जनों के हाथों में रहा तो परोपकार और जनकल्याण के काम में लगता है और दुष्टों और दुर्जनों के पास गया तो अपराध, लूट, आतंकवाद और बर्बादी के लिए प्रयोग किया जायेगा। हमारे देश में मनुष्य के चरित्र को अच्छा बनाने वाला आध्यात्मिक ज्ञान सभी के लिए उपलब्ध रहता था, पर इसमें रुचि लेने वाले ही इसे ग्रहण कर पाते थे। बाकी जितना भी भौतिक ज्ञान होता था वह सभी के लिए नहीं होता था। जब तक व्यक्ति उसके चरित्र की श्रेष्ठता, परोपकारिता, उसकी पापभीरुता आदि द्वारा उसको पात्र नहीं साबित कर देवे। यह निश्चय न हो जाए कि उसे मिलने वाले ज्ञान का वो केवल जनकल्याण में ही उपयोग करेगा, स्वार्थ में, धन कमाने में इसका दुरुपयोग नहीं करेगा-तभी ऐसी विद्या किसी को दी जाती थी। आज बम-बन्दूक ही नहीं, एटमबम तक बनाने की जानकारी आतंकवादियों के पास उपलब्ध है। यह वैज्ञानिकों की लापरवाही और अदूरदर्शिता बतलाती है।

१३. संसार में बच्चों और युवाओं को बर्बाद करने वाले नशे और नशीली दवाओं का जहर धर्मगुरुओं ने नहीं वैज्ञानिकों ने फैलाया है। और भी असंसख्य बातें हैं जो वैज्ञानिकों के द्वारा की गयी भूलों को बताती हैं। आप असंख्य बातें उनके समर्थन में भी कह सकते हैं, उन्होंने जो अच्छा किया है उसकी प्रशंसा की जाने योग्य है। हमने उपरोक्त सूची केवल यह बताने के लिए संकलित की है कि वैज्ञानिक भी इस बात को स्वीकार करें कि मनुष्य अल्पज्ञ है। ज्ञान के असंख्य पहलू हैं जो किसी को भी पता नहीं हैं, न ईश्वर मानने वालों को, न वैज्ञानिकों को। सभी जानना चाहते हैं। हमारे जीवन में जो-जो बातें अनिवार्य हैं उनका ज्ञान होने पर उनसे दु:खी होने, हानि पहुँचने की संभावना बहुत कम हो जाती है। इनसे लाभ उठाने और सुख प्राप्त करने की संभावना बढ़ जाती है। इसी कारण मनुष्य इन सब विषयों का ज्ञान प्राप्त करने का प्रयास करता है। ज्ञान-जिज्ञासा और निष्पक्षता के कारण ही प्राप्त होता है। जो जिज्ञासु न हो, उसमें जानने की इच्छा ही न होगी तो क्या जानेगा? जिज्ञासा तो हो, पर निष्पक्ष न हो, पहले से ही पूर्वाग्रह से ग्रस्त हो, तो ज्ञान को होते हुए भी स्वीकार नहीं करेगा, इस कारण जहाँ का तहाँ ही पड़ा रहेगा। तीसरी बात है उस विषय पर गहन शोध किया हुआ हो, श्रम किया हो। जिसने उस विषय पर विचार ही न किया हो वह भी कभी उस विषय के उच्च स्तर तक नहीं जा पायेगा। हम चूंकि नास्तिकता और आस्तिकता पर विचार कर रहे हैं अत: इस पर भी विचार करने के लिए, शोध करने के लिए जो सबसे पहली आवश्यकता है, वो शान्ति की है। युद्धप्रिय और युद्धरत सम्प्रदायों में इस विषय पर शोध होना असंभव है। दूसरी बात है सत्य के प्रति अटूट श्रद्धा होना। ऐसी श्रद्धा जो अपने सारे पूर्वाग्रहों की तिलांजलि देने में तत्पर कर दे। हर सम्प्रदाय में उसके संस्थापक का शब्द अन्तिम माना जाता है। यदि वही झूठा हो तो? यदि वो तर्कहीन अवैज्ञानिक बात करता हो तो? क्या उसे गलत कहने की हिम्मत उन सम्प्रदायों के अनुयायियों में होगी? यह बात वैज्ञानिकों पर भी लागू होती है। वे भी आजकल डार्विन बाबा, रिचर्ड डॉकिन और स्टीफन हॉकिन्स बाबा के मुरीद हुए पड़े हैं। उनके देश में अध्यात्म चलता था बाइबिल के अनुसार, सो इन्हें बाइबिल और उसकी मान्यताओं को ही उधेड़ने में मजा आने लगा। इन लागों के भारतीय अनुयायियों को भारत में पुराणवादी हिन्दू ही नजर आये, सो भारत में पुराणवादियों की पिटाई की जाने लगी। इन्होंने जब ईश्वरवादियों को पीटने का मन बनाया तो भी बीच से ही शुरू किया। पुराण, कुरान,

बाइबिल आदि यह सारी मध्यकाल की महाभारत युद्ध के पश्चात् की उपज है। उससे पूर्व सारे संसार में केवल एक ही विचारधारा प्रचलित थी, जिसे अधिकांश भारतीयों ने छोड़ रखा है, केवल वेद का नाम ही लिया जाता है। इस कारण वेद, वेदांग और दर्शन के नाम भी इन्हें पता ही नहीं थे तो इनके विचार कैसे जानते? पर जो जानने योग्य बात है वह यह कि वैदिक विचारधारा ही अत्यन्त विकृत होकर संसार के लगभग सारे सम्प्रदायों में प्रचलित है। वैज्ञानिकों द्वारा वेद और वैदिक मान्यताओं पर विचार न करने से दोनों का नुकसान हुआ। विज्ञानवादियों को वैज्ञानिक अध्यात्म न मिला और वेदवादियों का विज्ञान से टकराव न होने के कारण वैदिक विज्ञान का विकास और प्रसार न हो पाया। वैदिक विद्वानों ने भौतिक विज्ञान की ओर से आँखें बन्द कर रखी हैं जो कि स्वयं वेद की ही आज्ञाओं का उल्लंघन है-

यजुर्वेद ४०/१४ में कहा हैं-

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्यायामृतमश्नुते।

विद्या अर्थात् आध्यात्मिक ज्ञान और अविद्या अर्थात् जड़ प्रकृति का भौतिक ज्ञान। जो व्यक्ति दोनों विद्या और अविद्या को साथ-साथ जानता है, वही इस जन्म में और परलोक में सुख प्राप्त करता है। अविद्या के द्वारा जीवन में भौतिक पदार्थों से संसार में सुख प्राप्त करता है और विद्या के कारण मरने के बाद परलोक में भी सुख अर्थात् उत्तम जन्म और मोक्ष प्राप्त करता है। दुर्भाग्य की बात है कि भारतीय विद्वानों ने पहले वेदों की शिक्षा अपने स्वयं तक सीमित की, फिर स्त्रियों के वेद पढ़ने पर प्रतिबन्ध लगाया, फिर जब आम जन वेद-विहीन हो गए तो स्वयं भी वेद को अर्थसहित पढ़ना बन्द कर केवल मन्त्रों की आवाज निकालकर ही अपनी धन्यता मानने लगे। फलस्वरूप हिन्दुओं में वेदों के ज्ञान का लोप हो गया, वैदिक विज्ञान और तर्क नहीं रहा। पुराण, रामायण, महाभारत की कहानियों को ज्ञान का पर्याय मानने से ज्ञान-विज्ञान का स्तर बहुत नीचा हो गया। दुनिया हमारे अध्यात्म को वर्तमान बुद्धिविहीन पूजा और कर्मकाण्ड से नापने लगी। तभी वैज्ञानिकों ने वेद और वैदिक वाङ्मय को आउटडेटिड कहकर पढ़ना भी नहीं चाहा।

वैसे विचार करें तो ईश्वर को मानने न मानने से क्या फर्क पड़ता है? जो बिना जाने ही मानना चाहता है उसमें और बिना गंभीर विचार के न मानना दोनों एक समान हैं। संसार में जो सामान्य आदमी है उसके पास ईश्वर को तर्क और विज्ञान के आधार पर जानने की क्षमता ही नहीं है। वह तो मात्र विश्वास करने को तैयार बैठा है। ईश्वर जो उसके लिए किसी काम का नहीं है, केवल एक मानसिक आधार है कि मेरी सारी मुसीबतों और तकलीफों को वही दूर कर सकता है। यह संभव है अथवा नहीं, इस पचड़े में वो नहीं पड़ता। अपने हाथ जोड़ने को वह ईश्वर के प्रसन्न होने का साधन मानता है। तभी कई-कई किलोमीटर दूर से मन्दिर का कलश या पताका देखकर चप्पल उतारकर भक्तिभाव से हाथ जोड़ अपनी समस्या ईश्वर की झोली में डाल निश्चिन्त हो जाता है कि अब सब ठीक हो जायेगा। इस मानसिक आधार के साथ-साथ ईश्वर को इस प्रकार मानने में सामाजिक पहलू भी है। जो सज्जन व्यक्ति है वह जब ईश्वर को मानता है तो ईश्वर के दण्ड का भय भी रखता है। अपनी सज्जनता के कारण अधिकांश कर्मों को वो श्रेष्ठता से करता है, पर ईश्वर के भय से जब-जब भी जीवन में प्रलोभन उपस्थित होता है, काम, क्रोध, लोभ, मोह का अतिरेक होने की स्थिति उत्पन्न होती है, तो ईश्वर के भय से वो उनमें नहीं पड़ता है, बच जाता है पाप नहीं करता है। इसके विपरीत यदि ईश्वर नहीं है, यह बात उसके दिमाग में बचपन से बिठा दी जाए तो फिर पाप करने पर केवल समाज के दण्ड का भय ही उसे रोक पाए तो रोक पाए, अन्यथा न आत्मा है न परमात्मा है। सब कुछ अपने आप ही हो रहा है। किसी भी तरह से पद, प्रतिष्ठा, धन, पहचान, रिश्वत आदि से सामाजिक दण्ड से बचने का यदि उपाय कर लिया तो अपराध करना भी लाभदायक हो जाता है। जब मनुष्य आत्मा और परमात्मा को जानकर मानता है, फिर संसार के सारे जीवों में, पेड़-पौधों में भी अपने ही जैसी आत्मा की उपस्थिति को अनुभव करता है। किसी भी जीव को दु:ख देना पाप है और पाप का दण्ड ईश्वर दु:ख के रूप में देता है, इस बात को वो जानता है। स्वयं को दु:ख से बचाने के लिए जानबूझकर किसी

भी जीव को दु:ख नहीं देगा।

ईश्वर के गुणों को जान लेने पर उन गुणों का अपने जीवन में महत्त्व समझकर ईश्वर के करीब वो तभी हो सकता है जब उन गुणों को अपने अन्दर धारण करेगा। ईश्वर दयालु है, करुणामय है तो मैं भी जब अन्य जीवों पर दया और करुणा करूँगा तभी ईश्वर मुझे अपने आनन्द का दान देगा। ईश्वर के कर्मों के विपरीत कर्म ही ईश्वर का विरोध और नास्तिकता होती है। इसी कारण सच्चा आस्तिक ईश्वर को, उसके गुणों को, उसके कर्मों को पहले जानता है, फिर मानता है और उन पर चलता है। यह ज्ञान, यह आस्तिकता उसके और अन्य जीवों के बीच की समानता, एकता से उसका परिचय कराती है। मनुष्य को सच्चे अर्थों में मनुष्य बनाती है। आस्तिकता उसमें गुणों का आधान करती है। ईश्वर को मानकर मनुष्य गुणवान्, बुद्धिमान्, तर्कनिष्ठ और विज्ञान समर्थक होता है।

दुनिया में झगड़ा दो आस्तिकों में हो ही नहीं सकता। यह जितना बवाल मचा हुआ है, यह सारा नास्तिकों के बीच का झगड़ा है। जितनी जल्दी लोगों को यह समझ आयेगा कि हमें ठगा जा रहा है, सच्चा ईश्वर तो कुछ और ही है, उतनी जल्दी संसार में शान्ति और सुख का साम्राज्य स्थापित होगा, जहाँ न तो झूठ बोलकर ईश्वरभक्त बनाया जाएगा, न ही बन्दूक की धमकी से।

लेखकों से निवेदन

परोपकारी में उन लेखों, कविताओं, रचनाओं को स्थान दिया जाता है, जो **मौलिक व अप्रकाशित** हों। अत: सभी लेखकों से निवेदन है कि वे अपनी उन्हीं रचनाओं को भेजें जो मौलिक व अप्रकाशित हों।

अनेक लेखक मौलिक व अप्रकाशित रचना तो भेजते हैं, किन्तु उसे एक साथ **अनेक पत्रिकाओं को भेजते हैं।** अत: लेखकों से यह भी निवेदन है कि वे कृपया परोपकारी को वे ही रचना भेजें, जो अन्य पत्रिकाओं के लिए न भेजी हों। परोपकारी में छपने के बाद यदि अन्यत्र भेजना चाहें तो यह उनकी इच्छा पर निर्भर करता है।

कृपया लेख के अन्त में अपना **पूरा पता व चल-दूरभाष संख्या अवश्य लिखें।** लेख के स्वीकृत-अस्वीकृत होने की सूचना चल-दूरभाष पर संक्षिप्त संदेश द्वारा प्रेषित कर दी जायेगी। **परोपकारिणी सभा द्वारा रचनाओं के लिए किसी प्रकार का भुगतान नहीं किया जाता है।**

रचयिता अपनी रचना की एक प्रति कृपया अपने पास रखकर भेजें, क्योंकि **अस्वीकृत रचनायें डाक द्वारा लौटाई नहीं जाती हैं।** स्वीकृत रचना परोपकारी के किसी आगामी अङ्क में देखी जा सकती है। रचना के प्रकाशन में छ: माह या अधिक समय भी लग सकता है, अत: कृपया तब तक रचना को अन्यत्र न भेजें। **-संपादक**

भूल - सुधार

'परोपकारी' के पिछले अंक जनवरी द्वितीय में पृष्ठ संख्या १४ पर 'कुल्लियात आर्य मुसाफिर' के प्रकाशन से सम्बन्धित एक सूचना छपी है, जिसके शीर्षक में भूलवश **ऋषि जीवन चरित्र कुल्लियात आर्य मुसाफिर** छप गया है। वस्तुत: 'ऋषि जीवन चरित्र' पं. लेखराम जी का एक अलग ग्रन्थ है। परोपकारिणी सभा केवल **कुल्लियात आर्य मुसाफिर** का प्रकाशन कर रही है। पाठकों को हुई असुविधा के लिये हम खेद प्रकट करते हैं।

मनुष्यों को चाहिये कि अपने पुरुषार्थ से सुवर्ण आदि धन को इकट्ठा कर घोड़े आदि उत्तम पशुओं को रक्खें क्योंकि जब तक इस सामग्री को नहीं रखते तब तक गृहाश्रमरूपी यज्ञ परिपूर्ण नहीं कर सकते इसलिये सदा पुरुषार्थ से गृहाश्रम की उन्नति करते रहें।

- महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.६३

अतिथि यज्ञ के होता बनें

महर्षि दयानन्द सरस्वती की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा आर्य जगत् की एकमात्र ऐसी संस्था है जो सामूहिक सहयोग से ऋषि द्वारा निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति हेतु कृत संकल्प है।

सभा निरंतर प्रगति के पथ पर अग्रसर है। निरंतर अबाध गति से ऋषि उद्यान को आकर्षक एवं जन उपयोगी बनाने हेतु नव निर्माण करा रही है, वेद प्रचार पूरे देश में संचालित कर रही है, वेदों का एवं ऋषि ग्रंथों का प्रकाशन निरंतर जारी है।

प्रातः एवं सायं दैनिक यज्ञ– प्रवचन, वेद-पाठ, उपनिषद्, दर्शनादि शास्त्रों की कथा द्वारा वैदिक धर्म का कार्य नियमित रूप से आश्रम में चलता है। ***गुरुकुल***– आर्ष पद्धति से संचालित गुरुकुल में पढ़ रहे ब्रह्मचारी जो साधना एवं समाज सुधार का लक्ष्य लेकर अध्ययनरत हैं उनकी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति निःशुल्क की जाती है। ***अतिथि सेवा***– अतिथियों को यथोचित सुविधा प्रदान करने हेतु सभा पूर्णरूपेण प्रयासरत है एवं सभी सुविधाएँ आवास, प्रातराश, भोजन की व्यवस्था निःशुल्क की जाती है। ***गोशाला***– गोशाला में चालीस के लगभग पशु हैं। इससे अधिक का स्थान नहीं है। आश्रमवासियों को गोशाला में उत्पादित दुग्ध का निःशुल्क वितरण किया जाता है। ***वानप्रस्थ एवं संन्यास आश्रम***– वानप्रस्थ एवं संन्यास आश्रम में रहकर साधनारत वानप्रस्थियों एवं संन्यासियों की सभी प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति सभा द्वारा निःशुल्क की जाती है। स्वाध्याय एवं साधना की व्यवस्था है। ***विशाल पुस्तकालय***– इसमें दुर्लभ ग्रंथों का संग्रह है, सभा द्वारा शोधकर्ता छात्रों को शोध कार्य हेतु ग्रंथ निःशुल्क प्रदान किए जाते हैं जिनका लाभ स्वाध्यायशील व्यक्ति भी उठा सकते हैं। ***व्यायामशाला***– योग्य शिक्षक द्वारा नगर के युवाओं को ऋषि उद्यान में निःशुल्क व्यायाम प्रशिक्षण दिया जाता है। सभा द्वारा नियुक्त व्यायाम शिक्षक आसपास के गांवों में भी आर्यवीर दल का प्रशिक्षण शिविरों में प्रदान करते हैं।

ये सभी क्रियाकलाप आपके पावन उदार सहयोग से ही संभव हैं। जैसा कि सर्वविदित है कि सभा का आधार ही आकाशीय दानवृत्ति है। आपको प्रतिदिन अतिथि मिलना संभव नहीं फिर अतिथि यज्ञ कैसे किया जाय इसका उपाय है, कुछ राशि प्रतिदिन अतिथि यज्ञ के नाम से निकाल ली जाये और उसको एकत्र कर अतिथि सत्कार में गुरुकुल में भोजन आदि के सहयोग में दे दी जाय।

सभा के धार्मिक क्रियाकलापों एवं आवासीय स्थल ऋषि उद्यान में उपर्युक्त पावन क्रियाकलाप लम्बे समय तक अबाध चलते रहें इसके लिए सभा की योजना है कि प्रतिदिन १० रुपये अथवा प्रतिवर्ष ५ हजार की राशि प्रदान करने वाले उदार यशस्वी दानदाताओं का नाम अतिथि यज्ञ के स्थायी सदस्यों में अंकित किया जाता है ऐसे सज्जनों के नाम का परोपकारी में प्रकाशन भी किया जाता है।

अनेक 'अतिथि यज्ञ के होता' सदस्यों का आग्रह है, निश्चित तिथि जन्मदिन, विवाह वर्षगांठ या विशेष अवसर पर वे अपनी ओर से संस्था में भोजन कराना चाहते हैं। ऐसे महानुभावों से निवेदन है कि वे अतिथि यज्ञ के होता के रूप में एक दिन के भोजन व्यय की राशि लगभग पाँच हजार एक सौ रुपये भेजते हुए इच्छित दिन का विवरण सूचित करेंगे तो उसका उल्लेख आश्रम के सूचना पट्ट पर किया जा सकेगा।

यह अल्प राशि आप दैनिक संचय घट में जमा भी कर सकते हैं, वर्ष में लोग अरबों रुपए आग में पटाखे जलाकर व्यय करते हैं, असावधानी से बिजली जलती छोड़ इसे गंवा देते हैं आदि ऐसी छोटी-छोटी असावधानियों को रोक कर हम उसकी बचत राशि इस पावन कृत्य हेतु सभा को वर्ष में आसानी से दे सकते हैं।

सभा शिविरों के आयोजन द्वारा जन सामान्य को ऋषियों की जीवन प्रणाली सिखा रही है। आप इस योजना में स्थायी सदस्य बनकर ऋषि का संकल्प *संसार का उपकार* की पूर्ति में एक स्तम्भ बनकर सभा को सम्बल प्रदान कर सकते हैं।

यदि अपने सामर्थ्य के अनुसार राशि को न्यूनाधिक करना चाहें तो आपकी स्वतन्त्रता है अधिक से अधिक लोग परोपकारिणी सभा से जुड़ सकें, आप ऐसा करके ऋषि दयानन्द के कार्यों को आगे बढ़ाने में सहायक होंगे इसलिए ऐसी राशि निश्चित की है। आप से प्रार्थना है अपना नाम पता और संकल्प लिखकर अवगत करायें और अतिथि यज्ञ के होता बनें। अपनी राशि प्रतिमाह अथवा सुविधानुसार मनीआर्डर/डीडी/चैक द्वारा अथवा स्वयं उपस्थित होकर कार्यालय में जमा करा सकते हैं। आपका दान ८०जी (आयकर की धारा) के अंतर्गत कर मुक्त होगा।

अतः आपसे निवेदन है कि आप भी अतिथि यज्ञ के होता बनिये। जिन महानुभावों ने हमारा निवेदन स्वीकार कर यज्ञ में अपनी आहुति दी है, उनके नाम यहाँ प्रकाशित किये जा रहे हैं।

अतिथि यज्ञ के होता

(१ जनवरी से १५ जनवरी २०१७ तक)

१. देवमुनि, ऋषि उद्यान, अजमेर २. श्रीमती केसर देवी, जयपुर ३. श्री राजेश शर्मा, अजमेर ४. श्री बलवीर सिंह बत्रा, नई दिल्ली ५. श्री प्रेमप्रकाश शर्मा, देहरादून ६. श्री आर.पी. सिंह व श्री मुकेश, दिल्ली ७. श्री विवेक गुप्ता, इलाहाबाद ८. श्रीमती दीपा कोरानी, ऋषि उद्यान, अजमेर ९. श्रीमती विनीता चौहान, चुरु १०. श्रीमती सन्तोष, गुरुग्राम ११. श्री सत्यनारायण सोनी, अजमेर १२. श्री सन्नी, आबूरोड १३. श्री रुचिर आर्य, अजमेर १४. श्रीमती मधु माहेश्वरी, अजमेर १५. श्री आर्य विष्णु, दिल्ली १६. श्री आनन्दीलाल, पाली १७. श्री प्रेम गुप्ता, भटिण्डा १८. श्री कैलाश गर्ग, भटिण्डा १९. डॉ. ज्ञानप्रकाश बंसल, जालन्धर २०. डॉ. रमेश मुनि, ऋषि उद्यान, अजमेर २१. श्री विनय कुमार झा, जयपुर २२. श्री राजेश कुमार, रोहतक २३. श्री राजेश कुमार, नई दिल्ली २४. श्री हरीश कुमार झज्जर २५. श्री नन्दकिशोर काबरा, ऋषि उद्यान, अजमेर २६. श्रीमती मृदुला सक्सेना, कोटा २७. श्री राजीव सिंह, दिल्ली २८. श्री अतुल आर्य, गुरुग्राम २९. आचार्य सत्यजित्, रोजड़ ३०. श्रीमती सुशीला शर्मा, गाजियाबाद ३१. मेहता माता जी, अजमेर ३२. श्री लक्ष्मण मुनि आर्य, ऋषि उद्यान, अजमेर ३३. स्वामी देवेन्द्रानन्द, ऋषि उद्यान, अजमेर ३४. श्री सुरेन्द्र सिंह, दिल्ली ३५. श्री प्रदीप भण्डारी, जालन्धर ३६. मै. जेनिथ एन्टरप्राइजेज, नई दिल्ली। ३७. श्री रामस्वरूप आर्य, अलवर ३८. स्वस्तिकॉम चैरिटेबल ट्रस्ट, अमरावती ३९. श्री ओमप्रकाश शर्मा, मथुरा ४०. श्री अवनीश कपूर, दिल्ली ४१. श्री प्रतीक अग्रवाल, पुणे।

परोपकारिणी सभा, अजमेर।

गोभक्तों से निवेदन

ऋषि-उद्यान में परमार्थ हेतु गौशाला संचालित है। गौशाला की गौवों के दूध का वितरण सभी गुरुकुलवासियों, संन्यासियों एवं आगन्तुक अतिथियों में नि:शुल्क किया जाता है। आप सभी गौ-भक्तों एवं उदारमना दानदाताओं से सभा का निवेदन है कि गौवों को उत्तम चारा मिले, इसके लिए जो भी सज्जन चारा दान देना चाहें उनका स्वागत है। यदि आप दूरस्थ प्रदेश के हैं तो कृपया चारे हेतु अनुमानित राशि सभा को ड्राफ्ट/चैक/नगद भेज सकते हैं। यशस्वी दानदाताओं के नाम परोपकारी पत्रिका में प्रकाशित किए जाएँगे। आपका दान गौवों के संवर्धन में सहायक होगा।

जमानी आश्रम में संचालित गोशाला के दानदाता

(१ जनवरी से १५ जनवरी २०१७ तक)

१. हरसहाय सिंह (गंगवार) आर्य, बरेली २. कै. चन्द्रप्रकाश त्यागी व श्रीमती कमलेश त्यागी, रुड़की, ३. श्री किशोर सिंह, अजमेर ४. श्री बलवीर सिंह बत्रा, नई दिल्ली ५. श्री नरेन्द्र, जयपुर ६. श्री हरीश गोयल, अजमेर ७. श्री राधेश्याम गोयल, अजमेर ८. श्री अनिल गोयल, अजमेर ९. श्री चिरंजीव अंकित काबरा व श्रीमती मोना, ब्यावर अजमेर १०. श्री वेदव्रत, दिल्ली ११. श्री वेदप्रकाश, जीन्द १२. श्री श्याम सिंह, अजमेर १३. श्री मुमुक्षु मुनि, ऋषि उद्यान, अजमेर १४. श्रीमती मृदुला जोशी, अजमेर १५. श्री गौरीशंकर अग्रवाल, दिल्ली १६. ऋषभ गुप्ता, अम्बाला कैन्ट १७. श्री नाथूलाल त्रिवेदी, भीलवाड़ा १८. श्रीमती रामप्यारी त्रिवेदी, भीलवाड़ा १९. श्रीमती सन्तोष आर्य, सोनीपत २०. श्री बारुराम वेगवाल, हिसार २१. श्री मुकेश कुमावत, अजमेर २२. श्री कमलकिशोर व श्रीमती आशा कालानी, अजमेर २३. श्री केशव झँवर, ब्यावर, अजमेर २४. श्री हाकिम सिंह आर्य व श्रीमती पुष्पा देवी आर्य, नई दिल्ली २५. श्री सेनापति पुण्डरी, ओडिशा २६. श्री जितेन्द्र सिंह ढुल, रोहतक २७. श्री नन्दकिशोर काबरा, ऋषि उद्यान, अजमेर २८. श्रीमती पूनम, रोहतक २९. स्वामी देवेन्द्रानन्द, ऋषि उद्यान, अजमेर ३०. श्रीमती निधि भट्ट, अजमेर ३१. आर्यसमाज, शास्त्रीनगर, भीलवाड़ा ३२. मै. सैन्चुरी स्टोन्स प्रा. लि., मदनगंज, किशनगढ़ ३३. डॉ. ऋतु माथुर, अजमेर ३४. श्रीमती अनिता आर्य, नई दिल्ली ३५. श्रीमती मन्जु, गुडवानी ३६. श्री सांवरलाल, ऋषि उद्यान, अजमेर ३७. दीपशिखा, अजमेर ३८. श्रीमती लता मंगल, अजमेर ३९. पण्डित सतीश कुमार, फिरोजपुर।

- परोपकारिणी सभा, अजमेर।

'महाकवि' महर्षि दयानन्द 'सरस्वती'

पं. वीरेन्द्र शास्त्री

*[यह लेख सन् १९६३ का है। साहित्याचार्य पं. वीरेन्द्र शास्त्री एम.ए. (मन्त्री सार्वदेशिक विद्यार्य सभा रायबरेली-उत्तर प्रदेश) ने महर्षि के एक अनोखे रूप पर प्रकाश डाला है, वह है-उनका कवित्व। यह लेख प्रकाशित हो पाया या नहीं-ये तो पता नहीं, पर क्योंकि इस पर पं. युधिष्ठिर मीमांसक द्वारा संशोधन किये हुए थे और साथ ही हस्ताक्षर सहित लिखा था-''ठीक करके छापें।'' बीच-बीच में दी गई टिप्पणियां भी मीमांसक जी की ही हैं। एक विशेष पंक्ति जो मीमांसक जी ने लेख के अन्त में लिखी है-''ऋषि दयानन्द ने अनेक पत्रों और विज्ञापनों के अन्त में भी कुछ श्लोक लिखे हैं। श्याम जी के नाम का तो एक ऐसा पत्र है जो सारा श्लोकबद्ध ही है। हम इनका संग्रह अगले अंक में प्रकाशित करेंगे। कविजन उनका भी रसास्वादन करें।'' ये टिप्पणी एक और लेख की ओर संकेत करती है जो कि गवेषणीय है। अभी तो हम यही कह सकते हैं- कविजन ऋषि दयानन्द के काव्य का रसास्वादन करें। -**सम्पादक**]*

महर्षि दयानन्द सरस्वती को अनेक रूपों में देखा और वर्णन किया जा चुका है, किन्तु एक कवि के रूप में उनके दर्शन अभी तक कम लोगों ने किये होंगे।

वस्तुत: वे एक कवि थे। केवल क्रान्तदर्शी दूरद्रष्टा महर्षि होने के कारण ही नहीं, इतनी विशाल शब्दराशि के निर्माता होने के कारण ही नहीं, प्रत्युत कवि होने वाले समस्त गुणों को धारण करने और कविता की रचना करने के कारण वे वस्तुत: कवि ही नहीं, एक महान् कवि थे।

उनका काव्य यश तथा धन उपार्जन के लिए नहीं था। अत: किसी विस्तृत काव्य की उन्होंने रचना नहीं की। किन्तु उनका काव्य मम्मटाचार्य के अनुसार 'शिवेतरक्षतये' (अकल्याण के विनाश के लिए) था। अत: उन्होंने एक 'गद्य काव्य' के रूप में 'आर्याभिविनय' की रचना तो की ही, साथ ही प्राय: अपने प्रत्येक ग्रन्थ में प्रारम्भ अथवा अन्त में कुछ श्लोकों की भी रचना की, जो उनकी काव्यप्रियता तथा सहृदयता के साथ-साथ उनकी कवि-प्रतिभा तथा व्युत्पत्ति के भी परिचायक हैं।

ऋषि के कार्य का काल सं. १९२१ से १९४० तक लगभग २० वर्ष है। उसमें अन्तिम दस वर्ष (सं. १९३१-१९४० वि. तक) तो अन्य कार्यों के अतिरिक्त उन्होंने केवल लेखन कार्य ही इतना अधिक किया कि जिसे देखकर अत्यन्त आश्चर्य होता है। उनका समस्त साहित्य फुलस्केप आकार के लगभग २० सहस्र पृष्ठों में परिसमाप्त हुआ है।

कार्यकाल के प्रारम्भिक १० वर्षों (सं. १९२१-१९३० तक) में महर्षि दयानन्द ने किसी विशेष ग्रन्थ का निर्माण नहीं किया। उनके केवल निम्नलिखित ४ छोटे ग्रन्थों का पता चलता है, जिनमें कविता का अंश प्राप्त नहीं होता-

१. सन्ध्या (सं. १९२० वि.) २. भागवत खण्डन (सं. १९२३ वि.) ३. अद्वैतमतखण्डन (१९२७ वि.) ४. गर्दभतापिनी उपनिषद् (लगभग सं. १९३० वि.)

हास्यरसप्रिय कवि दयानन्द ने गर्दभतापिनी उपनिषद् श्रोताओं के मनोरंजन के लिए 'अवैदिक' 'गोपालतापिनी' उपनिषदों के समान बनाई थी, जो हास्यरस से परिपूर्ण थी, इसके अंश सुनाकर महर्षि अपनी हास्यप्रियता का परिचय देते थे। खेद है कि इसकी कोई प्रतिलिपि नहीं मिलती।

५. सत्यार्थप्रकाश

(प्र. सं. १९३१ वि. द्वि सं. सं. १९३९ वि.)

महर्षि के प्रमुख ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' में प्रारम्भ अथवा अन्त में उनका रचित कोई श्लोक नहीं मिलता। हाँ, मध्य में तृतीय समुल्लास के प्रथम अनुच्छेद के पश्चात् एक निम्नलिखित पद्य प्राप्त होता है, जो महर्षि के कवि होने का प्रमाण है-

विद्याविलासमनसो धृतशीलशिक्षा:,
सत्यव्रता रहितमानमलापहारा:।
संसार दु:खदलनेन सुभूषिता ये,
धन्या नरा विहितकर्मपरोपकारा:।।

इसका अर्थ महर्षि के शब्दों में निम्न प्रकार है-

जिन पुरुषों का मन विद्या के विलास में तत्पर रहता, सुन्दरशील स्वभाव युक्त, सत्य भाषणादि नियम पालन युक्त और जो अभिमान, अपवित्रता से रहित, अन्य की मलीनता के नाशक, सत्योपदेश, विद्यादान से संसारी जनों के दु:खों के दूर करने से सुभूषित, वेदविहित कर्मों से पराये उपकार करने में रहते हैं, वे नर और नारी धन्य हैं।

काव्य सौष्ठव-यह 'वसन्ततिलका' छन्द है। व, श, म, स, द, न, प और र अक्षरों की आवृत्ति से अनुप्रास अलंकार की शोभा स्पष्ट है। परोपकारी कर्मवीरों की प्रशंसा होने से 'उत्साह' स्थायि भाव 'वीररस' के रूप में परिणत होकर पाठकों के मन में आनन्द का संचार करता है। उसका सहायक 'ओज' गुण है। 'दु:ख दलन से भूषित' में रूपक अलंकार की ध्वनि द्वारा व्यंजना शक्ति से 'दु:ख दलन' ही 'आभूषण' के रूप में व्यक्त किया गया है। व्यंजना द्वारा यह भी बतलाया गया है कि परोपकार न करने वाले अधन्य अर्थात् निन्दनीय हैं।

इस प्रकार जितना भी विचार करें, यह श्लोक हमें इसके रचयिता को एक श्रेष्ठ कवि के रूप में सिद्ध करने के लिए पर्याप्त प्रतीत होता है।

६. सन्ध्योपासनादि पञ्चमहायज्ञविधि

(प्र. सं. १९३१ वि.-प्रि.-सं. १९३४ वि.)

पंचमहायज्ञविधि के सं. १९३१ वि. में बम्बई से मुद्रित प्रथम संस्करण में अन्त में महर्षिकृत निम्नलिखित श्लोक प्राप्त होता है जो सं. १९३४ वि. में प्रकाशित द्वितीय संस्करण में नहीं मिलता।

शशिरामाङ्कचन्द्रेब्दे त्वाश्विनस्य सिते दले।
प्रतिपद् रविवारे च भाष्यं वै पूर्तिमागमत्।।

अन्वय पदच्छेद सहित-शशि (१) राम (३) अङ्क (९) चन्द्र (१) अर्थात् 'अङ्कानां वामतो गति:' के अनुसार विक्रम संवत् १९३१ वें, (अब्दे) वर्ष में (तु आश्विनस्य) आश्विन मास के (सिते दले) शुक्ल पक्ष में प्रतिपदा, रविवार के दिन यह पंचमहायज्ञविधि का मन्त्र का भाष्य (वै) निश्चयपूर्वक (पूर्तिम्) समाप्ति को (आगमत्) प्राप्त हुआ।

प्राचीन ग्रन्थकार इसी प्रकार की शैली में अपने ग्रन्थों की रचना का समय प्रदर्शित किया करते थे। महर्षि ने इस शैली को प्राय: अपनी अनेक रचनाओं में स्वीकृत किया है। वस्तुओं के नामों से संख्याओं का संकेत अलंकार पूर्ण कूट अथवा चित्र नामक काव्य के अन्तर्गत आता है। इस प्रकार के वर्णनों से हमें महर्षि के कवित्व का परिचय मिलता है।

७. वेदान्तिध्वान्तनिवारण

इस पुस्तक का प्रथम संस्करण बम्बई में कार्तिक सं. १९३१ वि. में प्रकाशित हुआ। उसके पश्चात् के संस्करणों में मुख पृष्ठ की पीठ पर निम्नलिखित श्लोक मिलता है-

दयापूर्वोपेत: परमपरमाख्यातुमनघा:,
गिरायां तं जानन्त्यमतिमतविध्वंसमतिना।
स वेदान्तभ्रान्तानभिनवमतभ्रान्तमनस:,
समुद्धर्तुं श्रौतं प्रकटयति सिद्धान्तमनिशम्।।

इस श्लोक के पूर्वार्द्ध का मुद्रित पाठ कुछ अशुद्ध है। शुद्ध पाठ क्या रहा होगा-इसका विचार छोड़कर उत्तरार्द्ध पर ही विचार करने से महर्षि के कवित्व का पर्याप्त परिचय प्राप्त होता है।

उत्तरार्ध का अर्थ-दयानन्द सरस्वती नये मतों से भ्रान्त मन वाले वेदान्त से परिभ्रान्त मनुष्यों का अच्छे प्रकार उद्धार करने के लिए वैदिक सिद्धान्तों को प्रकट करते हैं।

८. वेदविरुद्धमतखण्डन (वल्लभाचार्यमतखण्डन)

इस पुस्तक के अन्त में निम्न श्लोक मिलता है-

शशिरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे कार्तिकस्यासिते दले।
अमायां भौमवारे च ग्रन्थोऽयं पूर्तिमागत:।।

अर्थात् सं. १९३१ में कार्तिक के कृष्ण पक्ष में अमावस्या मंगलवार को यह ग्रन्थ बनकर समाप्त हुआ।

९. शिक्षापत्रीध्वान्तनिवारण
(स्वामी नारायण मत खण्डन)

इस ग्रन्थ में गुजरात के स्वामी नारायणमत के प्रवर्तक सहजानन्द के बनाये ग्रन्थ 'शिक्षापत्री' का खण्डन किया गया है।

इसके अन्त में निम्नलिखित दो श्लोक मिलते हैं-

सर्वात्मा सच्चिदानन्दोऽजोऽनन्तस्सर्वशक्तिमान्।
भूयात्तमां सहायो नो न्यायकारी शुचि: प्रभु:।। १।।

भूमिरामाङ्कचन्द्रेब्दे सहस्यस्यासिते दले।
एकादश्यामर्कवारे ग्रन्थोऽयम्पूर्तिमागमत्।। २।।

अर्थ- सब का आत्मा, सत्, चित् आनन्दस्वरूप, अजन्मा, जन्मरहित, सर्वशक्तियों वाला, न्याय करने वाला, पवित्र, स्वामी परमात्मा हमारा सहायक होवे।

सं. १९३१ में सहस्य=पौष मास के कृष्णपक्ष में एकादशी रविवार के दिन यह ग्रन्थ पूरा हुआ।

काव्य सौष्ठव- प्रथम श्लोक में शान्त रस है, अनुष्टुप् छन्द है, अनुप्रास अलंकार है, माधुर्य गुण है।

१०. आर्याभिविनय

इस ग्रन्थ के आरम्भ में ७ श्लोक हैं। इसमें दो प्रकाश (दो अध्याय)- ऋग्वेद और यजुर्वेद के मन्त्रों के ही बनवाये और सामवेद तथा अथर्ववेद और ब्राह्मण ग्रन्थ तथा उपनिषद् के मन्त्रों के चार अध्याय शेष बनने रह गये, अतः यह ग्रन्थ अपूर्ण रहा और समाप्ति पर दिया जाने वाला श्लोक भी सम्भवतः इसीलिए नहीं रचा गया।

इन ७ श्लोक में प्रारम्भ के ५ श्लोक तो अनुष्टुप् छन्द में ही हैं, किन्तु छठा श्लोक तोटक छन्द में है और ७ वाँ श्लोक वंशस्थ छन्द में है।

सर्वात्मा सच्चिदानन्दोऽनन्तो यो न्यायकृच्छुचिः।
भूयात्तमां सहायो नो दयालुः सर्वशक्तिमान् ।। १।।
चक्षूरामाङ्कचन्द्रेब्दे चैत्रे मासि सिते दले।
दशम्यां गुरुवारेऽयं ग्रन्थारम्भः कृतो मया ।। २।।
बहुभिः प्रार्थितः सम्यग् ग्रन्थारम्भः कृतोऽधुना।
हिताय सर्वलोकानां ज्ञानाय परमात्मनः।। ३।।
वेदस्य मूलमन्त्राणां व्याख्यानं लोकभाषया।
क्रियते सुखबोधाय ब्रह्मज्ञानाय सम्प्रति।। ४।।
स्तुत्युपासनयोः सम्यक् प्रार्थनायाश्च वर्णितः।
विषयो वेदमन्त्रैश्च सर्वेषां सुखवर्द्धनः।। ५।।
विमलं सुखदं सततं सुहितं,
जगति प्रततं तदु वेदगतम्।
मनसि प्रकटं यदि यस्य सुखी,
स नरोऽस्ति सदेश्वरभागधिकः।। ६।।
विशेषभागीह वृणोति यो हितं,
नरः परात्मानमतीव मानतः।
अशेषदुःखात्तु विमुच्य विद्यया,
स मोक्षमाप्नोति न कामकामुकः।। ७।।

अर्थ-जो परमात्मा सब का आत्मा, सत् चित् आनन्दस्वरूप, अनन्त, न्यायकारी, पवित्र, दयालु और सर्वशक्तिमान् है वह हमारा सहायक होवे।। १।।

सं. १९३२, चैत्र मास, शुक्ल पक्ष, दशमी, गुरुवार के दिन मैंने यह ग्रन्थारम्भ किया ।। २।।

बहुत जनों से यथायोग्य प्रार्थना किये जाने पर अब मैंने सब लोगों के हित के लिए और परमात्मा के ज्ञान के लिये ग्रन्थ का आरम्भ किया।। ३।।

वेद के मूल मन्त्रों का व्याख्यान सुखपूर्वक बोध के लिए और ब्रह्मज्ञान के लिए इस समय लोक भाषा (हिन्दी) द्वारा किया जाता है।। ४।।

सब के सुख को बढ़ाने वाला स्तुति, उपासना और प्रार्थना का विषय अच्छे प्रकार से वेद मन्त्रों के द्वारा वर्णित किया है।। ५।।

जो ब्रह्म, मल (दोष) से रहित, सुख देने वाला, सदा अच्छा हित करने वाला जगत् में प्रसिद्ध है, वही वेदों से प्राप्य है। वह जिसके मन में प्रकट हो गया, वह मनुष्य अधिक सुखी है और वही ईश्वर के आनन्द का भागी है।।६।।

इस संसार में जो मनुष्य, अत्यन्त मान से और प्रमाणों से, हितकारी परमात्मा को स्वीकार करता है वह विशेष भाग्यशाली है। वह विद्या द्वारा सब दुःख से छूटकर मुक्त होकर मोक्ष को प्राप्त होता है, कामनाओं से युक्त कामी मनुष्य नहीं।

छठे तथा सातवें श्लोक में माधुर्य और प्रसाद गुण के साथ शान्त रस कैसा सुन्दर छलक रहा है जिसे अनुप्रास आदि अलंकार विभूषित कर रहे हैं। दोनों श्लोक अपने रचयिता को 'कवि' प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त हैं।

११. संस्कार विधि

संस्कारविधि के प्रारम्भ में महर्षि दयानन्द सरस्वती रचित ११ श्लोक मिलते हैं। ११ वाँ श्लोक द्वितीय संस्करण के समय का संवत् १९४० का है, शेष सभी प्रथम संस्करण के समय के सं. १९३२ के हैं।

९वाँ श्लोक शिखरणी छन्द में है और विशेष कवित्वपूर्ण है, शेष १० श्लोक अनुष्टुप (श्लोक) छन्द में है। श्लोक नीचे प्रस्तुत किये जाते हैं-

सर्वात्मा सच्चिदानन्दो विश्वादिर्विश्वकृद् विभुः।
भूयात्तमां सहायो नस्सर्वेशो न्यायकृच्छुचिः।।१।।

सबका आत्मा, सच्चिदानन्द, विश्व का आदि, विश्व का रचयिता, सर्वव्यापक, सब का ईश, न्यायकारी, पवित्र परमात्मा हमारा सहायक हो।

गर्भाद्या मृत्युपर्यन्ताः संस्काराः षोडशैव हि।
वक्ष्यन्ते तं नमस्कृत्यानन्तविद्यं परेश्वरम्।। २।।

उस अनन्त विद्यावाले परमेश्वर को नमः करके, गर्भ से लेकर मृत्युपर्यन्त निश्चयपूर्वक सोलह ही संस्कारों का वर्णन किया जायगा।

वेदादिशास्त्रासिद्धान्तमाध्याय परमादरात्।
आर्यैतिह्यं पुरस्कृत्य शरीरात्मविशुद्धये।। ३।।

वेद आदि शास्त्रों के सिद्धान्तों का अच्छे प्रकार ध्यान करके परम आदर से आर्यों का इतिहास सामने रखकर शरीर और आत्मा की विशेष शुद्धि के लिए १६ संस्कार वर्णन किये जायेंगे। इसकी पूर्व द्वितीय श्लोक के साथ संगति है (इस प्रकार दूसरा और तीसरा श्लोक युग्म रूप में है।)

संस्कारैस्संस्कृतं यद्यन्मेध्यमत्र तदुच्यते।
असंस्कृतं तु यल्लोके तदमेध्यं प्रकीर्त्यते।। ४।।

जो-जो संस्कारों से शुद्ध है वह वह इस संसार में मेध्य (पवित्र) कहा जाता है और जो संसार में असंस्कृत है वह अमेध्य (अपवित्र) कहा जाता है।

अतः संस्कारकरणे क्रियतामुद्यमो बुधैः।
शिक्षयौषधिभिर्नित्यं सर्वथा सुखवर्द्धनः।। ५।।

इसलिए बुद्धिमान् विद्वानों को शिक्षा द्वारा, ओषधियों से संस्कार के करने में सदा सब प्रकार से सुख को बढ़ाने वाला पुरुषार्थ करना चाहिए।

कृतानीह विधानानि ग्रन्थग्रन्थनतत्परैः।
वेदविज्ञानविरहैः स्वार्थिभिः परिमोहितैः।। ६।।

इस संसार में ग्रन्थों के बनाने में लगे हुए, वेद विज्ञान से रहित, परिमोहित स्वार्थी मनुष्यों ने अनेक विधान बनाये हैं।

प्रमाणैस्तान्यनादृत्य क्रियते वेदमानतः।
जनानां सुखबोधाय संस्कारविधिरुत्तमः।। ७।।

उनको प्रमाणों से आदररहित करके, वेदों के प्रमाण से, मनुष्यों के सुखपूर्वक ज्ञान के लिए उत्तम 'संस्कारविधि' बनाई जा रही है।

बहुभिः सज्जनैस्सम्यङ् मानवप्रियकारकैः।
प्रवृत्तो ग्रन्थकरणे क्रमशोऽहं नियोजितः।। ८।।

अच्छे प्रकार मनुष्यों के प्रिय कार्य करने वाले बहुत से सज्जनों से क्रम से नियोजित किया गया मैं इस ग्रन्थ के रचने में प्रवृत्त हुआ हूँ।

दयाया आनन्दो विलसति परो ब्रह्मविदितः,
सरस्वतत्यस्याग्रे निवसति मुदा सत्यनिलया।
इयं ख्यातिर्यस्य प्रततसुगुणा हीशशरणा-
स्त्यनेनायं ग्रन्थो रचित इति बोद्धव्यमनघाः।।९।।

(ब्रह्मविदितः) ब्रह्म में प्राप्त होने वाला तथा ब्रह्म को जानने वाला (परः) श्रेष्ठ (दयायाः आनन्दः) दया का आनन्द और 'दयानन्द' (विलसति) विशेष रूप से शोभित हो रहा है, (अस्य अग्रे) इसके आगे (सत्यनिलया) सत्य में निवास करने वाली (सरस्वती) विद्या और 'सरस्वती' शब्द (मुदा)हर्ष के साथ (निवसति) वर्तमान है। (हि) निश्चय ही (यस्य) जिसकी (इयम्) यह (प्रततसुगुणा) अच्छे गुणों को विस्तृत करने वाली (ईशशरण) परमात्मा की शरण में वर्तमान (ख्यातिः) प्रसिद्धि (अस्ति) है। (अनेन अयं ग्रन्थः रचितः) उसने यह ग्रन्थ 'संस्कारविधि' बनाया है। (इति अनघाः बोधव्यम्) इस प्रकार हे पापरहित सज्जन पुरुषो! आपको जानना चाहिए।

चक्षूरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे कार्तिकस्यासिते दले।
अमायां शनिवारेऽयं ग्रन्थारम्भः कृतो मया।।१०।।

सं. १९३२ वि. कार्तिक मास के अन्तिम पक्ष अमावस शनिवार को मैंने यह ग्रन्थ आरम्भ किया।

यहाँ 'अन्तिम' पक्ष का अभिप्राय गुजराती पञ्चाङ्ग के अनुसार कार्तिक कृष्ण पक्ष है क्योंकि वहाँ पहला शुक्ल पक्ष और दूसरा अन्तिम कृष्ण पक्ष माना जाता है। उत्तर भारत के पञ्चाङ्ग के अनुसार मार्गशीर्ष का कृष्ण पक्ष समझना चाहिये। यह बात न समझ कर संशोधकों ने द्वितीय संस्करण

की रफ और प्रेस कॉपी के 'अन्तिमे' पाठ के स्थान पर छपते-छपते 'असिते'=कृष्ण पक्ष कर दिया[1], जो अब तक छपता चला आ रहा है।[2] किन्तु उत्तर भारत की कार्तिक १९२२ कृष्ण पक्ष की अमावस्या को शनिवार था ही नहीं। अतः यह संशोधन विपरीत पड़ गया।

फिर स्वामी जी ने मार्गशीर्ष न लिखकर कार्तिक क्यों लिखा? इसका उत्तर यह है कि वे स्वयं गुजराती थे, एक गुजराती पण्डित कृष्णराम इच्छाराम से संस्कारविधि लिखाते थे और गुजरात के सूरत अथवा बम्बई अथवा बड़ोदे में यह लिखी गई थी। (द्र. पं. देवेन्द्रनाथ कृत जीवन चरित पृ. ३०४)

विन्दुवेदाङ्कचन्द्रेऽब्दे शुचौ मासेऽसिते दले।
त्रयोदश्यां रवौ वारे पुनः संस्करणं कृतम्।।११।।

सं. १९४० वि., आषाढ़ कृष्ण १३ रविवार को दूसरा संस्करण छपवाने का विचार किया।

प्रथम संस्करण के अन्त में महर्षि ने निम्नलिखित श्लोक रचकर प्रकाशित किया था, जो अगले संस्करण में नहीं छपा-

नेत्ररामाङ्कचन्द्रेऽब्दे पौषे मासि सिते दले।
सप्तम्यां सोमवारेऽयं ग्रन्थः पूर्तिं गतः शुभः।।

सं. १९३२ पौष शुक्ल ७ सोमवार को यह ग्रन्थ पूर्ण हुआ। इस प्रकार संस्कार विधि की रचना में १ मास ८ दिन का समय लगा।

१२. १३. वेदभाष्य का नमूना

सं. १९३१ तथा १९३२ वि. में महर्षि ने वेदभाष्य के दो नमूने प्रकाशित किए, परन्तु उनमें कोई श्लोक नहीं मिलता।

१४. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका

इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ के प्रारम्भ में महर्षि कृत ८ श्लोक प्राप्त होते हैं जिनमें पहला 'शार्दूलविक्रीडित' छन्द में और तीसरा शिखरणी छन्द में है, संस्कारविधि के पूर्वोक्त सं. ९ श्लोक का किंचित् परिवर्तित रूप है। शेष ६ श्लोक अनुष्टुप् छन्द में हैं। श्लोक और उनका अर्थ निम्नप्रकार है-

ब्रह्मानन्तमनादि विश्वकृदजं सत्यं परं शाश्वतं,
विद्या यस्य सनातनी निगमभृद् वैधर्म्यविध्वंसिनी।
वेदाख्या विमला हिता हि जगते नृभ्यः सुभाग्यप्रदा,
तन्नत्वा निगमार्थभाष्यमतिना भाष्यं तु तन्तन्यते।।१।।

ब्रह्म अनन्त, अनादि, विश्व का निर्माता, अजन्मा, सत्य, श्रेष्ठ तथा नित्य है, जिसकी वेद नामक विद्या सनातन, मन्त्रों को धारण करने वाली, वैधर्म्य का नाश करने वाली, संसार के लिए हितकारिणी और मनुष्यों के लिए सौभाग्य प्रदान करने वाली है, उस ब्रह्म को नमस्कार करके, वेदमन्त्रों के अर्थ और भाष्य करने की बुद्धि रखने वाले मेरे द्वारा यह भाष्य विस्तृत रूप से किया जा रहा है।

इसमें अनुप्रास, पुनरुक्तवदाभास आदि अलंकार अच्छे रूप में प्रयुक्त किये गये हैं।

कालरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे भाद्रमासे सिते दले।
प्रतिपद्यादित्यवारे भाष्यारम्भः कृतो मया।।२।।

सं. १९३३ भाद्रप्रद, शुक्ल पक्ष प्रतिपदा रविवार के दिन मैंने भाष्य का आरम्भ किया।

दयाया आनन्दो विलसति परः स्वात्मविदितः
सरस्वत्यस्याग्रे निवसति हिता हीशशरणा।
इयं ख्यातिर्यस्य प्रततसुगुणा वेदमनना-
स्त्यनेनेदं भाष्यं रचितमिति बोद्धव्यमनघाः।

इसका अर्थ संस्कारविधि के नवम श्लोक के अर्थ के समान है। केवल चार स्थानों पर परिवर्तन है। १. 'ब्रह्मविदितः' के स्थान पर यहाँ 'स्वात्मविदितः' है अर्थात् अपनी आत्मा में अनुभव होने वाला (आनन्द और 'आनन्द'

---

१. इस भयानक अशुद्धि की ओर सबसे पूर्व हमने सन् १९४६ में अपने 'ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों का इतिहास' ग्रन्थ में विद्वानों का ध्यान आकृष्ट किया था। (द्र. पृष्ठ ८१,८२)। हमने उस समय प्रत्येक तिथि उस समय के प्राचीन दोनों प्रकार के पचाङ्गों से मिलाई थी। इसके लिए हमने पुराने पञ्चाङ्गों की प्रतिलिपि की थी। ऋषि के ग्रन्थों तथा पत्रों में क्वचित् अन्यत्र भी गुजराती पञ्चाङ्ग का उपयोग देखा जाता है। -यु. मी.

२. हमारे लेख के पश्चात् वैदिक यन्त्रालय से प्रकाशित २३ वें संस्करण के लिए श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी ने संशोधन किया था, उन्होंने इस अशुद्धि को ठीक कर दिया। इसलिए (सं. २००६ सन् १९४९) के पश्चात् छपे संस्करणों में 'अन्तिमे' ठीक छप रहा है। -यु. मी.

शब्द)। २. 'मुदा सत्यनिलया' के स्थान पर यहाँ 'हिता हीशशरणा' पाठ है, अर्थात् हितकारिणी और ईश के शरण में वर्तमान (सरस्वती)। ३. 'हीशशरणा' के स्थान पर यहाँ 'वेदमननात्' पाठ है अर्थात् 'वेदों के मनन करने से'। ४. 'अयं ग्रन्थो रचितः' के स्थान पर यहाँ 'इदं भाष्यं रचितम्' अर्थात् यह भाष्य बनाया–यह परिवर्तित पाठ है।

मनुष्येभ्यो हितायैवसत्यार्थं सत्यमानतः।
ईश्वरानुग्रहेणेदं वेदभाष्यं विधीयते।। ४।।

ईश्वर की कृपा से मनुष्यों के हित के लिये ही, सच्चे प्रमाण से, सच्चे अर्थ वाले वेदभाष्य का विधान किया जा रहा है।

संस्कृतप्रकृताभ्यां यद् भाषाभ्यामन्वितं शुभम्।
मन्त्रार्थवर्णनं चात्र क्रियते कामधुङ्मया।। ५।।

और संस्कृत और प्राकृत (हिन्दी) भाषाओं से युक्त, शुभ कामनाओं को पूर्ण करने वाले मन्त्रों के अर्थ का वर्णन है, वह मेरे द्वारा यहाँ किया जा रहा है।

आर्याणां मुन्यृषीणां या व्याख्यारीतिः सनातनी।
तां समाश्रित्य मन्त्रार्था विधास्यन्ते तु नान्यथा।।६।।

श्रेष्ठ मुनियों और ऋषियों की जो सनातन व्याख्या की रीति है उसका अच्छे प्रकार आश्रय लेकर मन्त्रों के अर्थ किये जायेंगे, इससे भिन्न रीति से नहीं।

येनाधुनिकभाष्यैर्ये टीकाभिर्वेददूषकाः।
दोषाः सर्वे विनश्येयुरन्यथार्थं विवर्णनाः।। ७।।

जिससे आधुनिक भाष्यों और टीकाओं के द्वारा जो वेद को दूषित करने वाले, मिथ्या अर्थ के वर्णन करने वाले दोष हैं, वे सब विनष्ट हो सकें।

सत्यार्थश्च प्रकाश्येत वेदानां यः सनातनः।
ईश्वरस्य सहाय्येन प्रयत्नोऽयं सुसिध्यताम्।।८।।

और वेदों का जो सनातन सच्चा अर्थ है वह प्रकाशित हो सके। ईश्वर की सहायता से यह प्रयत्न अच्छे प्रकार से सिद्ध होवे।

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के अन्त में भी दो श्लोकों की रचना महर्षि ने की है। इनमें पहला श्लोक स्रग्धरा छन्द में होने के कारण कवित्व की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। दूसरा अनुष्टुप् है।

वेदार्थाभिप्रकाशप्रणयसुगमिका कामदा मान्यहेतुः,
संक्षेपाद् भूमिकेयं विमलविधिनिधिः सत्यशास्त्रार्थ युक्ता।
सपूर्णाऽकार्यथेदं भवति सुरुचि यन्मन्त्रभाष्यं मयातः,
पश्चादीशानभक्त्या सुमतिसहितया तन्यते सुप्रमाणम्।।१।।

वेदों के अर्थ को अच्छे प्रकार प्रकाश की प्राप्ति में सहायता करने वाली, कामनाओं को पूर्ण करने वाली, प्रतिष्ठित बनाने वाली, निर्मल विषयों के विधान का कोश, सत्यशास्त्रों के प्रमाणों से युक्त यह 'भूमिका' मैंने संक्षेप से संपूर्ण कर दी। अब इसके पश्चात् जो यह मन्त्रों का भाष्य अच्छी रुचि युक्त हो रहा है वह अच्छी बुद्धि देने वाली परमात्मा की भक्ति से अच्छे प्रमाणों के साथ विस्तृत किया जाता है।

मन्त्रार्थभूमिका ह्यत्र मन्त्रस्तस्य पदानि च।
पदार्थान्वयभावार्थाः क्रमाद् बोध्या विचक्षणैः।।२।।

यहाँ भाष्य में क्रमशः मन्त्रार्थ की भूमिका, मन्त्र, पदच्छेद, पदार्थ, अन्वय और भावार्थ होंगे। यह विद्वानों द्वारा समझ लेना चाहिए।[१]

१५. ऋग्वेदभाष्य

ऋग्वेद भाष्य के आरम्भ में 'मन्दाक्रान्ता' छन्द में महर्षि ने एक श्लोक रचा है–

विद्यानन्दं समवति चतुर्वेदसंस्तावना या
सम्पूर्येशं निगमनिलयं संप्रणम्याथ कुर्वे।
वेदत्र्यङ्के विधुयुतसरे मार्गशुक्लेऽङ्ग भौमे
ऋग्वेदस्याखिलगुणगुणिज्ञानदातुर्हि भाष्यम्।।१।।

आगे मैं सब प्रकार से विद्या के आनन्द को देने वाली चारों वेदों की भूमिका को समाप्त ओर जगदीश्वर को अच्छी प्रकार प्रणाम करके संवत् १९३४ मार्ग शुक्ल ६ भौमवार के दिन सम्पूर्ण ज्ञान को देने वाले ऋग्वेद के भाष्य का आरम्भ करता हूँ।। १।।

१६. यजुर्वेदभाष्य

यजुर्वेद भाष्य के आरम्भ में महर्षि विरचित निम्न दो श्लोक मिलते हैं–

यो जीवेषु दधाति सर्वसुकृतज्ञानं गुणैरीश्वर–

१. भूमिका के इन श्लोकों को पर प्रतिपक्षियों ने अनेक आक्षेप किए हैं, उनका युक्तियुक्त उत्तर इसी लेख के लेखक महोदय ने 'ऋषि दयानन्द की कविता विषय में आक्षेप और उनका समाधान' लेख में दिया है।

स्तं नत्वा क्रियते परोपकृतये सद्यः सुबोधाय च।
ऋग्वेदस्य विधाय[1] वै गुणगुणिज्ञानप्रदातुर्वरं,
भाष्यं काम्यमथो क्रियामययजुर्वेदस्य भाष्यं मया।।१।।
चतुस्त्र्यङ्कैरङ्कैरवनिसहितैर्विक्रमसरे
शुभे पौषे मासे सितदलभविश्वोन्मिततिथौ।
गुरोर्वारे प्रातः प्रतिपदमभीष्टं सुविदुषाम्,
प्रमाणैर्निर्बद्धं शतपथनिरुक्तादिभिरपि।। २।।

अर्थात् जो ईश्वर अपनेदयालुता आदि गुणों से (सृष्टि के आदि में) जीवों में सब सुकृत कर्मों का ज्ञान धारण कराता है उसको नमस्कार करके परोपकार और अच्छे ज्ञान के लिए सकल द्रव्यों के गुणों का ज्ञान कराने वाले ऋग्वेद का भाष्य करके क्रियामय यजुर्वेद का भाष्य करता हूँ। विक्रम सं. १९३४ के पौष शुक्ल १३ गुरुवार के दिन प्रातः मैंने शतपथ, निरुक्त आदि के प्रमाणों से युक्त यजुर्वेद भाष्य का आरम्भ किया।

१७. आर्योद्देश्यरत्नमाला

इस पुस्तक के अन्त में निम्नलिखित श्लोक प्राप्त होता है–

वेदरामाङ्कचन्द्देऽब्दे विक्रमार्कस्य भूयतेः।
नभस्य सितसप्तम्यां सौम्ये पूर्तिमगादियम्।।

सं. १९३४ वि. में श्रावण शुक्ल ७, बुधवार के दिन यह पूर्ण हुई।

१८. भ्रमोच्छेदन

राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द के 'निवेदन' के उत्तर में लिखी गई इस पुस्तक के अन्त में महर्षि का रचा निम्नलिखित श्लोक है–

मुनिरामाङ्कचन्द्रेब्दे शुक्रे मासेऽसिते दले।
द्वितीयायां गुरौ वारे भ्रमोच्छेदो ह्यलंकृतः।।

अर्थात् सं. १९३७, ज्येष्ठ, कृष्ण पक्ष द्वितीया गुरुवार के दिन भ्रमोच्छेदन ग्रन्थ समाप्त हुआ। श्री युधिष्ठिर मीमांसक ने अपने

'ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों का इतिहास' में लिखा है कि 'शुक्रे' अर्थात् 'ज्येष्ठ' अशुद्ध छपा है। इस स्थान पर 'शुचौ' अर्थात् 'आषाढ़' होना चाहिए।

१९. गोकरुणानिधि

इस ग्रन्थ के आरम्भ में निम्नलिखित दो श्लोक महर्षि रचित हैं–

तनोतु सर्वेश्वर उत्तमं बलं गवादिरक्षं विविधं दयेरितः।
अशेषविघ्नानि निहत्य नः प्रभुः सहायकारी विदधातु
गोहितम्।।१।।

यह छन्द 'वंशस्थ' नामक है। अत्यन्त सुन्दर उत्साहवर्धक प्रार्थना है। वह दया से प्रेरित, सब का स्वामी परमेश्वर गौ आदि की रक्षार्थ अनेक प्रकार के उत्तम बल का विस्तार करे। हमारा स्वामी हमारे समस्त विघ्नों को नष्ट करके हमारा सहायक होकर गौओं का हित सम्पादन करे।

ये गोसुखं सम्यगुशन्ति धीरास्ते धर्मजं सौख्यमथाददन्ते।
क्रूरा नराः पापरता न यन्ति प्रज्ञाविहीनाः
पशुहिंसकास्तत्।।२।।

जो धीर पुरुष अच्छे प्रकार से गौओं के सुख की कामना करते हैं, वे धर्म से उत्पन्न सुख को प्राप्त करते हैं। क्रूर, पाप में रत, बुद्धि से रहित, पशुहिंसक मनुष्य उस को नहीं पा सकते।

इस ग्रन्थ के अन्त में निम्नलिखित दो श्लोक महर्षि ने रचे हैं–

धेनुः परा दयापूर्वा यस्यानन्दाद् विराजते।
आख्यायां निर्मितस्तेन ग्रन्थो गोकरुणानिधिः।।१।।
मुनिरामाङ्कचन्द्देऽब्दे तपस्यस्यासिते दले।
दशम्यां गुरुवारेऽलंकृतोऽयं कामधेनुपः।। २।।

पहला श्लोक श्लेष अलंकार से युक्त 'दृष्टिकूट' के रूप में उत्तम चित्रकाव्य है। अर्थ यह है कि जिसके नाम में 'आनन्द' से पहले 'दया' और धेनुः=गौ=वाणी='सरस्वती' परवर्ती विराजमान है, अर्थात् १. गौओं पर दया से पूर्ण होने में जिसे आनन्द आता है, और २. जिसका नाम 'दयानन्द सरस्वती' है, उसने 'गोकरुणानिधि' ग्रन्थ बनाया है।।१।।

सं. १९३७ वि., फाल्गुन १०, गुरुवार के दिन यह कामधेनु गौओं का रक्षक (गोकरुणानिधि) ग्रन्थ सुशोभित

---

१. यहाँ 'विधाय करके' का अर्थ आरम्भ करने मात्र से है, समाप्त करने से नहीं। क्योंकि दोनों भाष्यों के आरम्भ करने की जो तिथियाँ दोनों ग्रन्थों के आरम्भ में दी हैं, उनमें केवल १ मास ८ दिन का ही अन्तर है। -यु. मी.

हुआ।

२०. सत्यधर्मविचार (मेला चाँदपुर)

इस ग्रन्थ के मन्त्र में निम्नलिखित श्लोक मिलता है-

ऋषिकालाङ्कब्रह्माब्दे नभशुक्ले दले तिथौ।
द्वादश्यां मङ्गले वारे ग्रन्थोऽयं पूरितो मया।।

अर्थात् १९३७ विक्रम सं. श्रावण शुक्ल १२, मंगलवार को यह ग्रन्थ मैंने पूर्ण किया।

वेदाङ्ग प्रकाश के भागों में भी ग्रन्थरचनाकालसूचक श्लोक मिलते हैं, किन्तु उनका कर्तृत्व निश्चित न होने से उन्हें उद्धृत नहीं किया जाता। संभव है अन्य श्लोक भी महर्षि ने रचे हों।[१] किन्तु उपर्युक्त श्लोक ही उन्हें महाकवि प्रमाणित करने में समर्थ हैं।।

१. ऋषि दयानन्द ने अनेक पत्रों और विज्ञापनों के अन्त में भी कुछ श्लोक लिखते हैं। श्याम जी के नाम का तो एक ऐसा पत्र है जो सारा श्लोकबद्ध ही है। हम उनका संग्रह अगले अङ्क में प्रकाशित करेंगे। कविजन इनका भी रसास्वादन करें।

शिवरात्रि और हम

विजय 'अरुण'

जीवन में कितना अंधकार
चहुँ ओर एक काली दीवार
भय दिखलाती है बार-बार
उत्साह मंद दृग हुए बन्द
मन में उठता है यह विचार
जीवन में कितना अंधकार

आशा का मुख भी है मलीन
साहस भी डोले दीन-दीन
सब भाव हुए हैं भावहीन
क्या मन की बात, सब कुछ है मात
हर ओर निराशा का प्रसार
जीवन में कितना अंधकार

तम का इतना है राज्य क्रू र
मन भटक रहा है दूर-दूर
काया भी बोझिल चूर-चूर
सब थके-थके, सब बुझे-बुझे
जैसे कुछ बुझे हुए अंगार
जीवन में कितना अंधकार

हे शिवरात्रि! के दिन महान्
दे मुझ को भी कुछ ज्ञान दान
था दयानन्द को दिया ज्ञान
हे दिन पुनीत! हो मेरी जीत
मैं हर पग पर हूँ रहा हार
जीवन में कितना अंधकार

मनुष्यों को चाहिये कि पुरुषार्थ से विद्या का सम्पादन, विधिपूर्वक अन्न और जल का सेवन, शरीरों को नीरोग और मन को धर्म में निवेश करके सदा सुख की उन्नति करें।

-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.१४

विद्वान् स्त्रियों को योग्य है कि अच्छी परीक्षा किए हुए पदार्थ को जैसे आप खायें वैसे ही अपने पति को भी खिलावें कि जिससे बुद्धि, बल और विद्या की वृद्धि हो और धनादि पदार्थों को भी बढ़ाती रहें।

-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.४२

संस्था-समाचार

अन्नप्राशन संस्कार- मकर संक्राति १४ जनवरी रविवार को सायंकाल आर्यसमाज के मूर्धन्य आचार्य सत्यानन्द वेदवागीश जी द्वारा श्री नवीन मिश्रा के पोते सात्त्विक का अन्नप्राशन संस्कार सम्पन्न हुआ।

अतिथि- अजमेर नगर में केसरगंज स्थित ऐतिहासिक महर्षि दयानन्द आश्रम, अनुसन्धान भवन एवं वैदिक पुस्तकालय, ऋषि निर्वाण स्थल-भिनाय कोठी, ऋषि उद्यान स्थित महर्षि दयानन्द सरस्वती संग्रहालय आदि देखने, संन्यासियों-विद्वानों से मिलकर शंका-समाधान करने, दैनिक यज्ञ एवं प्रवचन से लाभ लेने, पुष्कर आदि पर्यटन स्थलों में भ्रमण एवं आर्यसमाज के प्रचार के लिए देश-विदेश के संन्यासी, वानप्रस्थी, विद्वान्, ब्रह्मचारी, आर्यवीर, आर्यसमाज के कार्यकर्त्ता, गृहस्थ स्त्री-पुरुष, बच्चे निरन्तर आते रहते हैं। पिछले १५ दिनों में जोधपुर, अहमदाबाद, वैशाली, आबू रोड, टोंक, बीकानेर, दिल्ली, जालन्धर, सोनीपत, चरखी दादरी आदि स्थानों से ३४ अतिथिगण ऋषि उद्यान पधारे।

दैनिक प्रवचन- ऋषि उद्यान की यज्ञशाला में प्रतिदिन वेद के प्रकाण्ड पण्डित सत्यानन्द वेदवागीश जी के व्याख्यान होते हैं, जिनमें वेद के मन्त्रों की जीवन में महत्ता के साथ-साथ व्याकरण का भी ज्ञान दिया जाता है। प्रात: कालीन प्रवचन में आचार्य सत्यानन्द वेदवागीश जी ने विश्वानि देव सवितर्दुरितानि .....आदि ईश्वर स्तुति प्रार्थना उपासना के मन्त्रों की व्याख्या की। सायंकालीन प्रवचन में उपाचार्य सत्येन्द्र जी ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका ग्रन्थ पर चर्चा एवं शंका समाधान करते हैं। आचार्य वेदप्रकाश जी एवं आचार्य कर्मवीर जी ने अपने-अपने वेद प्रचार यात्रा का अनुभव सुनाया। शनिवार सायंकालीन प्रवचन में श्रीमती रश्मिप्रभा जी ने यज्ञोपवीत के वेद विषयक प्रसंगों की जानकारी दी।

मकर संक्रान्ति पर्व सम्पन्न- इस अवसर पर प्रात:काल विशेष यज्ञ किया गया एवं पर्व की विशेषताओं पर चर्चा हुई।

विश्व पुस्तक मेला, दिल्ली- प्रगति मैदान, नई दिल्ली में ६ से १४ जनवरी को सम्पन्न पुस्तक मेले में परोपकारिणी सभा की ओर से महर्षि दयानन्द द्वारा लिखित वेदभाष्य, सत्यार्थ प्रकाश एवं अन्य वैदिक साहित्य का स्टॉल लगाया गया। इस पुस्तक मेले में श्रीमती ज्योत्स्ना 'धर्मवीर' जी के निर्देशन में श्री प्रभाकर आर्य, श्री सोमेश पाठक, श्री दिवाकर गुप्ता, श्री श्यामसिंह एवं श्री सम्पत ने प्रचार कार्य किया।

मेले में नि:शुल्क सत्यार्थप्रकाश वितरण किया गया। जो नये लोग थे, जिन्होंने सत्यार्थप्रकाश कभी नहीं पढ़ा था, केवल उन्हीं लोगों को नि:शुल्क सत्यार्थप्रकाश दिया गया। साथ ही पं. इन्द्र 'विद्यावाचस्पति' द्वारा लिखित महर्षि दयानन्द जीवन चरित्र, आर्याभिविनय एवं डॉ. धर्मवीर जी की पुस्तक 'सत्यार्थ प्रकाश में क्या है?' का भी वितरण किया गया। यह पुस्तक सत्यार्थप्रकाश को समझने के लिये अत्युपयोगी है।

अत: यह विश्व पुस्तक मेला सभा के लिये एक रचनात्मक कार्य का माध्यम बना।

जैसे वेद के वेत्ता विद्वान् लोग वेदानुकूल मार्ग से परमेश्वर को जानकर उत्तम ज्ञान से उसका सेवन करते हैं वैसे ही जगदीश्वर सब को उपासनीय अर्थात् सेवन करने के योग्य है, वैसे ज्ञान के विना ईश्वर की उपासना कभी नहीं हो सकती क्योंकि विज्ञान ही उसकी अवधि है।

- महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.४

इस बात का निश्चय है कि ब्रह्मचर्य्य, उत्तम शिक्षा, विद्या, शरीर और आत्मा का बल, आरोग्य, पुरुषार्थ, ऐश्वर्य, सज्जनों का संग, आलस्य का त्याग, यम-नियम और उत्तम सहाय्य के विना किसी मनुष्य से गृहाश्रम धारा जा नहीं सकता।

- महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.३१

आर्यजगत् के समाचार

१. शिविर सम्पन्न- आर्यसमाज की युवा इकाई आर्यवीर दल राजस्थान का प्रान्तीय योग व्यायाम प्रशिक्षण व चरित्र निर्माण शिविर का आयोजन शीतकालीन अवकाश में २४ से ३० दिसम्बर २०१७ तक दर्जियों की बगीची, फलौदी, राज. में सम्पन्न हुआ। शिविर संयोजक श्री चुन्नीलाल आर्य ने बताया कि ७ दिवसीय आवासीय शिविर में जोधपुर, जैसलमेर, बाड़मेर, नागौर, श्रीगंगानगर, अजमेर, जयपुर, भीलवाड़ा, उदयपुर, चित्तौड़गढ़, सवाई माधोपुर, बांसवाड़ा आदि जिलों से ८० आर्यवीरों ने प्रशिक्षण प्राप्त किया।

२. वार्षिकोत्सव सम्पन्न- १३ व १४ जनवरी २०१८ को प्रभात आश्रम का वार्षिकोत्सव विविध कार्यक्रमों के साथ सम्पन्न हुआ। दि. १३ जनवरी को देश के विभिन्न विश्वविद्यालय से पधारे मूर्धन्य विद्वानों ने 'उपनिषदों में विविध विद्याएँ' विषय पर सम्पन्न राष्ट्रीय वैदिक शोध संगोष्ठी में अपने विचार प्रस्तुत किये। संगोष्ठी में दिल्ली विश्वविद्यालय के संस्कृत विभागाध्यक्ष प्रो. शारदा व डॉ. पंकज कुमार मिश्र आदि ५० विद्वान् सम्मिलित हुए। वहीं १४ जनवरी को मकर सौर संक्रान्ति के पावन पर्व पर नए ब्रह्मचारियों का उपनयन व वेदारम्भ संस्कार सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर गुरुकुलीय छात्रों ने शारीरिक बल प्रदर्शन व आसनों का प्रदर्शन मल्लखम्भ पर किया।

३. ग्रन्थ का लोकार्पण- गुरुकुल आश्रम आमसेना, ओडिशा के स्वर्णजयन्ती महोत्सव के अवसर पर 'अध्यात्म पथ' के सम्पादक आचार्य चन्द्रशेखर शास्त्री द्वारा संकलित एवं सम्पादित 'शोभायात्रा के गीत' नामक पुस्तक का लोकार्पण पतंजलि विश्वविद्यालय के कुलपति आचार्य बालकृष्ण जी के कर कमलों से सम्पन्न हुआ। पुस्तक का लोकार्पण करते हुए आचार्य बालकृष्ण जी ने गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के महत्त्व, उस शिक्षा की आवश्यकता और वर्तमान समय में गुरुकुल के विस्तार पर बल दिया।

४. आर्य महासम्मेलन- दयानन्द मठ दीनानगर, जिला गुरदासपुर, पंजाब के तत्वावधान में एस.एस.एम. स्कूल झंगी दीनानगर में १० फरवरी २०१८ को महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के १९४वें जन्मोत्सव पर आर्य महासम्मेलन स्वामी सदानन्द सरस्वती की अध्यक्षता में धूमधाम से मनाया जा रहा है, जिसमें आप सपरिवार सादर आमन्त्रित हैं।

५. भजन-प्रवचन कार्यक्रम- महर्षि दयानन्द शिक्षण केन्द्र झज्जर के तत्वावधान में मकर सक्रान्ति के उपलक्ष्य एवं माता धापादेवी की पुण्य स्मति में यज्ञ, भजन, प्रवचन का कार्यक्रम किया गया, जिसकी अध्यक्षता रिटायर्ड प्राचार्य डॉ. एच.एस. यादव ने की। कार्यक्रम में मुख्य वक्ता आचार्य बालेश्वर शास्त्री, रिटायर्ड प्राध्यापक द्वारका प्रसाद एवं वैदिक सत्संग मण्डल समिति झज्जर के अध्यक्ष श्री रमेशचन्द्र वैदिक रहे। यज्ञ के ब्रह्मा पं. जयभगवान आर्य रहे।

६. आर्यसमाज की स्थापना- सेन्ट्रल बैंक के पूर्व प्रबन्धक श्री रामचरण आर्य ने अपनी कॉलोनी में एक नए आर्यसमाज की स्थापना का विचार बनाया और ईश्वर की कृपा से वह एक बृहत उत्सव तथा आर्यसमाज के गठन के रूप में वह परिणित हुआ। महावीर नगर तृतीय के महर्षि दयानन्द पार्क, कोटा, राज. में नये आर्यसमाज की स्थापना की गई। श्री राजेन्द्र आर्य, के.एल. सुमन ने मंच का संचालन किया।

७. व्यक्तित्व विकास शिविर सम्पन्न- आर्यसमाज खेड़ा अफगान, सहारनपुर, उ.प्र. के १२०वें वर्ष में उत्सव और व्यक्तित्व विकास शिविर का आयोजन १७ व १८ मार्च २०१८ को किया गया है। इस अवसर पर आचार्य कर्मवीर - अजमेर, श्री वेदपाल, आर्य भजनोपदेशक सिनौली जनपद बागपत आदि विद्वान् पधार रहे हैं।

चुनाव समाचार

८. आर्यसमाज महावीर नगर तृतीय, कोटा, राज. के चुनाव में **प्रधान**- श्री रामचरण आर्य, **मन्त्री**- श्री राधावल्लभ राठौर, **कोषाध्यक्ष**- श्री विष्णु आर्य को चुना गया।

९. आर्यसमाज खेड़ा अफ़गान, सहारनपुर, उ.प्र. के चुनाव में **प्रधान**- श्री आदित्य प्रकाश गुप्त, **मन्त्री**- श्री राजेश कुमार आर्य, **कोषाध्यक्ष**- श्री अमित आर्य को चुना गया।

१०. आर्यसमाज रुद्रपुर के चुनाव में **प्रधान**- श्री जवाहरलाल तनेजा, **मन्त्री**- श्री राजेन्द्र चांदना, **कोषाध्यक्ष**- श्री अमित आर्य को चुना गया।

११. आर्यसमाज रम्पुरा, किच्छा मार्ग, रुद्रपुर, ऊधमसिंह नगर के चुनाव में **प्रधाना**- श्रीमती डॉ. प्र. शास्त्री, **मन्त्री**- डॉ. अशोक कुमार आर्य, **कोषाध्यक्ष**- श्री प्रमित आर्य को चुना गया।